बाल विज्ञान पत्रिका

जनवरी 2008 • 15 रुपए

चकमक

नया साल मुबारक हो!

जगह तो बनाने से बनती है...

रिनचिन

बड़ी झील की चढ़ाई पर भट धुआँ छोड़ते हुए हमें खींचने की कोशिश कर रहा है। हम भी तो बहुत सारे हैं उसमें भरे हुए। भट चलता है फिर रुकने की धमकी देते हुए आखिरकार चढ़ ही जाता है।
बहुत कुछ टिका है उस पर – नरसिम्हा का रोज़गार और हमें भी तो घर पहुँचना है।

शाम ढल रही है और अब भक-भक करता हुआ भट ढलान से उतर रहा है, हमारे घरों की तरफ।
नीचे जाना उसके लिए आसान है।

आधे रास्ते में ढलती हुई रोशनी में और धुएँ के बीच, दो बड़ी बोरियों के नीचे एक छोटी और एक बड़ी औरत चली जा रही हैं।
"रोको! रोको!" सब चिल्लाते हैं।
"क्यों?" भटवाला लड़का कहता है, "अब क्या हुआ?" वो बच्चों की शरारत से परेशान होने का नाटक कर रहा है।
कोई कहता है, "वो देखो, वो जो जा रहे हैं कचरा बीनकर, उनको भी घर छोड़ देते हैं।"
"नहीं...नहीं, ऐसे हर कोई को तो नहीं बिठा सकते।" भट वाला कहता है।
"अरे भैया हम भी तो हर कोई ही हैं।"
"रोको रोको!" सब ज़ोर से चिल्लाते हैं।

भट धीरे-धीरे रुकता है पर बन्द नहीं होता। एक बार बन्द हुआ तो फिर न जाने चालू होगा कि नहीं। दोनों बोरियाँ और उनकी मालिक अन्दर घुस आती हैं। कुछ कहती नहीं, बस मुस्कुराहट से दोस्ती दिखाती हैं।
थोड़ी दूरी पर भट को रुकवाती हैं। धन्यवाद में फिर एक मुस्कुराहट देकर उतर जाती हैं।

भट फिर आगे बढ़ता है। और अन्दर बातें भी। धीरे से हम में से कोई पूछता है, "यह भट तो हमें मेला दिखाने के लिए लिया गया था। हम ही इतने सारे हैं तो फिर इनको क्यों बिठा लिया? जगह तो थी ही नहीं।"
कोई जवाब देता है, "पर देखो जगह तो बन गई न।"
"वो भी तो फिट हो ही गए थे न।" किसी ने कहा।
"कभी-कभी आराम से और कभी थोड़ी मुश्किल से पर जगह तो बनाने से बनती है!"

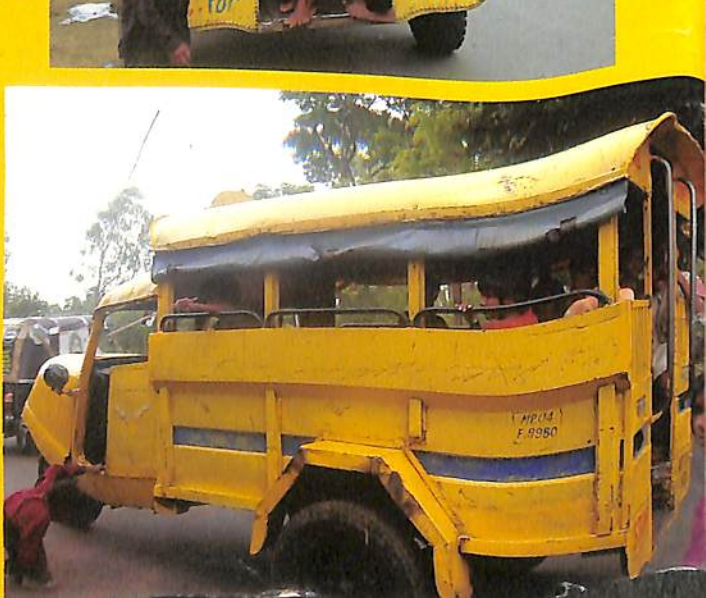

फोटोः महीन

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका • 256 • जनवरी 2008

नए साल में...
ख्वाबों का इक-इक दाना अँकुराए
हर पौधे पर जीवन गुच्छे-गुच्छे आए
सूरज-चाँद, नदी-पहाड़ जैसे सबके हैं
वैसे ही हर शय हरेक के हिस्से आए
सुशील शुक्ल

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सम्पादकीय सलाहकार
रैक्स डी रोज़ारियो
तेजी ग्रोवर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
अतनु राय
डिजिटल एक्सप्रेशन्स

वितरण
अनिल लोखण्डे
कमल सिंह

सहयोग
कार्तिक शर्मा
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क
एक प्रति - 15.00
वार्षिक - 150.00
दो साल - 275.00
तीन साल - 400.00
आजीवन - 1500.00

सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा मनीऑर्डर/चैक (एकलव्य के नाम से बने) से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल, म.प्र. 46 2016
फोनः (0755) 267 1017, 255 0976, 6549033
फैक्सः (0755) 246 1703
chakmak@eklavya.in
www.eklavya.in

इस अंक में...

2 नए साल की पहेली
6 तारे ज़मीं पर...
7 खेल
8 चिड़िया धूल में क्यों नहाती है?
10 एक दिन...
11 मियां जी-चिंया जी
12 लिसबेत की नाक...
16 इसीलिए तो बड़े जीव माँस नहीं खाते
18 हेनरी कार्तिए ब्रेसाँ
20 जनवरी की कुछ यादें
23 तुम भी बनाओ...
24 कॉपी करो लेकिन ओरिजिनल की
26 एक घड़ा...
29 चित्रपहेली
30 हम किसी से कम नहीं
31 "ख" से
32 मेरा पन्ना
35 हरी घास की झोपड़ी...
38 माथापच्ची/उलझन
40 चीकू की कहानी

आवरण - अतनु राय

26

40

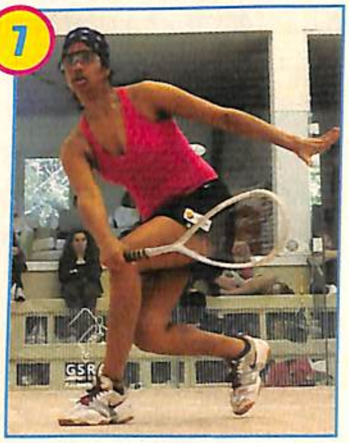
7

12

23

8

10

30

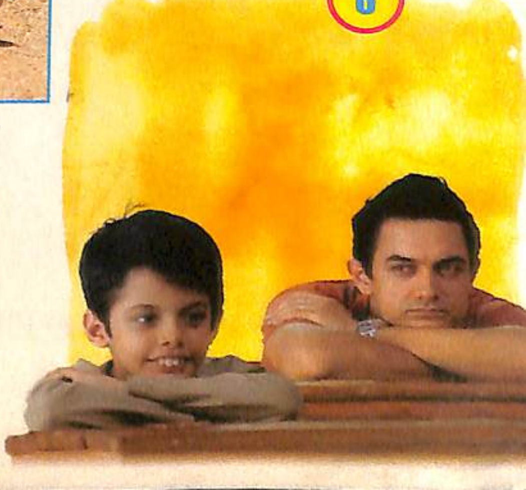
6

रैक्स डी रोज़ारियो

नए साल की पहेली

नया साल मुबारक! यह दिन यानी नए साल का पहला दिन। हमें पहले से पता होता है कि यह दिन किस दिन आने वाला है। यही तो कैलेण्डर का कमाल है। एक रोचक बात यह है कि अलग-अलग संस्कृतियों में नया साल अलग-अलग दिन मनाया जाता है।

हम यदि स्कूल या दफ्तर के कैलेण्डर (ग्रिगोरियन कैलेण्डर) के अनुसार चलते हैं तो यह दिन 1 जनवरी है। पर भारत और दुनिया के अन्य देशों में आज भी कम-से-कम 40 तरह के कैलेण्डर प्रचलित हैं! इतने सारे कैलेण्डर होने पर भी इनमें काफी समानताएँ हैं। किसी भी कैलेण्डर में दो बातें ज़रूरी होती हैं – साल शुरू कब होगा और एक साल की अवधि कितनी होगी। यह मज़ेदार बात है कि दुनिया के सारे कैलेण्डरों में साल की अवधि लगभग बराबर है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल से ही लोग खगोलीय और प्राकृतिक (खासकर खेती सम्बन्धी) घटनाओं के आधार पर ही साल की अवधि का अनुमान लगाते आए हैं। जैसे – आकाश में सूर्य, चन्द्रमा और तारों का सफर, ऋतुओं का बदलाव, बरसात का आगमन इत्यादि।

और भी मज़ेदार बात यह है कि प्राचीन काल की अधिकांश सभ्यताओं में नया साल बसन्त ऋतु से शुरू होता था। बसन्त नए जीवन का प्रतीक है। इस मौसम में ज़्यादातर पेड़-पौधों में फूल आने लगते हैं। जैसे 4,000 साल पहले की मेसोपोटेमिया सभ्यता (आज का इराक) में नया साल बसन्त के नवचन्द्रोदय से शुरू होता था। बिहु (असम का बसन्त त्यौहार), बैसाखी (पंजाब में फसल कटाई का त्यौहार, 13-14 अप्रैल), चैती चाँद (सिन्धी समुदाय का नया साल, मार्च-अप्रैल), गुड़ी पड़वा (महाराष्ट्र में नया साल, मार्च-अप्रैल), नवरोज़ (पारसी समुदाय समेत ईरान, ईराक, तुर्की और मध्य एशियाई देशों का नव वर्ष), पोइला बैसाख (पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश का नव वर्ष), पुतान्डू (तमिल लोगों का नया साल), उगाडी (तेलुगू व कन्नड़ लोगों का नया साल), विशु (केरल में कटाई का त्यौहार) सभी बसन्त के आगमन पर होते हैं।

कुछ भारतीय कैलेण्डरों में दीवाली को नया साल माना जाता है। प्राचीन मिस्र में नया साल जुलाई के तीसरे सप्ताह से शुरू होता था जब नील नदी में पानी का स्तर बढ़ने लगता था। उस वक्त लोग बोनी की तैयारी में लग जाते थे।

वैसे तो कैलेण्डर किसी न किसी प्राकृतिक घटना के बार-बार होने के आधार पर बनाए जाते रहे हैं, मगर इतिहास बताता है कि लोग इन प्राकृतिक और खगोलीय घटनाओं को अपनी धार्मिक मान्यताओं से भी जोड़ते आए हैं। आम तौर पर तीन तरह के कैलेण्डर प्रचलित हैं – सूर्य की गति पर

अफगानिस्तानः साले नौ मुबारक
अरब देशः कुलम वा अन्तुम बिखैर, अन्तुम सलीमौन
आन्ध्रप्रदेशः नूतन समवत्सरा शुभकानक्शलू
बंगालः शुवो नबो बर्षा
चीनः जिन नियान कुअइ ले
चेक गणतंत्रः स्टास्नी नोवी रोक

डेनमार्कः गोड न्यार
नेदरलैण्डः गेलुकिग नियू जार
फिनलैण्डः ओनेलिस्टा ऊटा वुओटा
फ्रांसः बॉने अनेई
जर्मनीः गुटेस न्यू जार
यूनानः कैनूर्गियॉस क्रोनॉस

आधारित, चाँद की कलाओं पर आधारित और इन दोनों के मिले-जुले अवलोकनों पर आधारित।

चन्द्र और सौर कैलेण्डर

सौर कैलेण्डर इस बात पर आधारित हैं कि आकाश में सूर्य एक निश्चित समय में चक्कर लगाता प्रतीत होता है। सूर्य की इसी आभासी गति के कारण ऋतुएँ भी बदलती हैं। साल की शुरुआत उस दिन से होती है जब दिन और रात की लम्बाई बराबर होती है (मार्च 21-22)। एक सौर वर्ष में लगभग 365.25 दिन होते हैं। ग्रिगेरियन, जूलियन, फारसी, मिस्र आदि कैलेण्डर सौर चक्र पर आधारित हैं। ये कैलेण्डर ऋतुओं से भी मेल खाते हैं।

चन्द्र कैलेण्डर चाँद की कलाओं पर आधारित है और ऋतुओं के चक्र से तालमेल नहीं रखता है। हर साढ़े 29 दिन में चाँद पृथ्वी का एक चक्कर काटता है। दो पक्षों की इस अवधि को चन्द्र मास कहते हैं। यह जानना तुम्हें रोचक लगेगा कि उर्दू में चाँद को माह कहते हैं और महीना, मास वगैरह शब्द इसी से बने हैं। 12 चन्द्र मास का एक चन्द्र वर्ष बनता है जिसकी कुल अवधि लगभग 354 दिन है।

सौर और चन्द्र वर्षों में लगभग 11 दिन का अन्तर होता है। इस तरह तीन वर्षों में यह अन्तर एक महीने का हो जाता है। सौर और चन्द्र वर्षों में तालमेल बिठाने के लिए हर दूसरे या तीसरे साल में एक अतिरिक्त चन्द्र मास (अधिक मास) इसीलिए जोड़ा जाता है।

1 जनवरी और नया साल

1 जनवरी का धर्म या ऋतुओं से कोई नाता नहीं। फिर इस दिन को नए साल से कैसे जोड़ा गया? इसके पीछे एक लम्बी कहानी है। बात प्राचीन रोमन साम्राज्य से शुरू होती है। वहाँ चन्द्र कैलेण्डर प्रचलित था और साल का पहला दिन 15 मार्च को माना जाता था। एक साल में मात्र दस माह होते थे और दिन होते थे 304। जनवरी और फरवरी महीनों का नामोंनिशान न था। साल लगभग 25 दिसम्बर को खत्म होता था। इसके बाद के 61 दिनों को गिना नहीं जाता था। ये सर्दी और छुट्टी के दिन हुआ करते थे। इनके बीत जाने के बाद नया साल शुरू किया जाता था।

लगभग 2700 साल पहले रोम के सम्राट ने तय किया कि साल का पहला दिन 1 जनवरी होगा। सम्राट ने साल में दो अतिरिक्त माह (कुल 51 दिन) जोड़े जिनमें जनवरी शामिल था। यह नाम जैनस नाम के द्विमुखी देवता से लिया गया था जिसका एक चेहरा आगे देखता था (नए साल की ओर) और दूसरा पीछे (बीते साल की ओर)। इससे साल में 355 दिन हो गए। साल और ऋतुओं के बीच सामंजस्य बैठे इसलिए एक तेरहवाँ महीना जोड़ा गया। इसमें 22 या 23 दिन होते थे। यह महीना दो या तीन सालों में ज़रूरत के हिसाब से जोड़ा जाता था। इसका कोई नियम नहीं था – जब भी ऋतुएँ गड़बड़ होने लगतीं, एक महीना जोड़ देते थे। इसलिए गड़बड़ियाँ होने लगीं। साल समय से पहले ही शुरू हो जाता था। यानी अभी बसन्त ऋतु आई ही नहीं है मगर कैलेण्डर के हिसाब से नया साल आ धमकता।

छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ यह कैलेण्डर करीब 650 साल

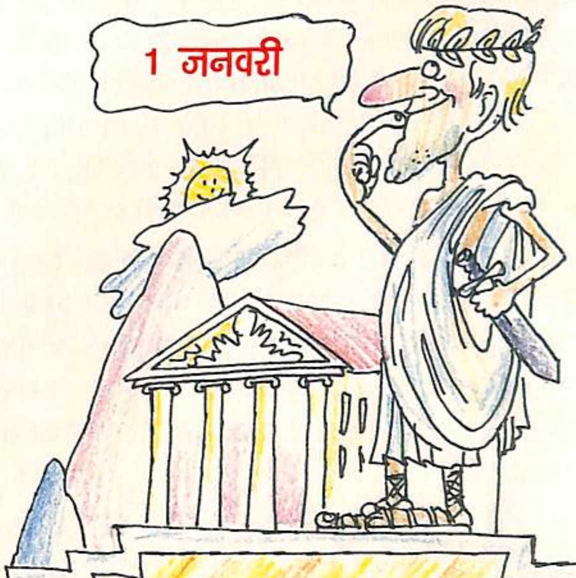

गुजरातः नूतन वर्षाभिनन्दन
हिन्दी भाषी प्रान्तः नया साल मुबारक
हॉन्गकॉन्गः सुन लीन फाइ लोक
इज़राइलः शाना टोवा
इथियोपियाः मेल्कम अदिस अमेट यहूनलीवो
हंगेरीः बॉल्डॉग उय ऐवेट
इंडोनेशियाः सेलामत ताहुन बारू
इटलीः फेलीस अन्न न्यूओवो
इराकः सनाह जदीदाह
ईरानः साले नौ मुबारक
उर्दू भाषी देशः नया साल मुबारक हो
जापानः आकेमाशीटे ओमेडेटो गोजाइमासू

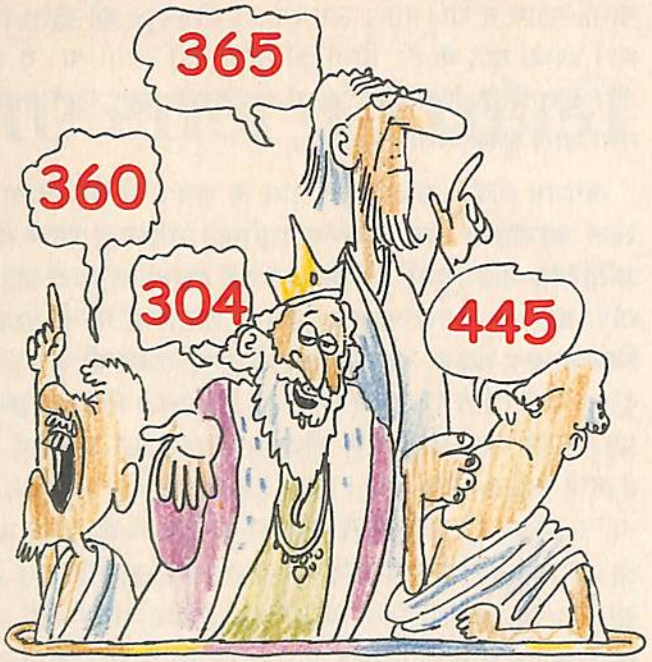

तक चला। साल की शुरुआत के खिसकते जाने के कारण 47 ईसा पूर्व का साल जिस मौसम में शुरू होना चाहिए था उससे 90 दिन पहले शुरू हो गया। मिस्र के खगोलविद् सोसिजिनीस की सलाह पर जूलियस सीज़र ने वहाँ लीप वर्ष प्रणाली शुरू की। साल की औसत लम्बाई 365¼ दिन होती है। सोसिजिनीस का सुझाव था कि साल में 365 दिन हों और हर चौथे साल एक दिन जोड़ दिया जाए ताकि ¼ दिन का हिसाब ठीक हो जाए। महीनों के दिन भी तय कर दिए गए। वे आज जितने ही थे। इस कैलेण्डर को जूलियन कैलेण्डर कहते हैं।

जूलियन कैलेण्डर 45 ईसा पूर्व में लागू हुआ था। 650 वर्षों में गड़बड़ हो चुके महीनों को उनके सही मौसम में लाने के लिए इस साल के फरवरी महीने के अन्त में 23 दिन और नवम्बर और दिसम्बर के बीच 67 अतिरिक्त दिन जोड़े गए। इस तरह यह एक साल 445 दिनों का हो गया। इसे "गफलत का साल" कहा जाता है।

जूलियस सीज़र चाहते थे कि नया साल 22 दिसम्बर से शुरू हो जिस दिन सबसे लम्बी रात और सबसे छोटा दिन होता है। लेकिन लोगों को यह ठीक न लगा। 45 ईसा पूर्व में अमावस्या 1 जनवरी के दिन आने वाली थी, जिसे शुभ माना जाता है। इस तरह 1 जनवरी साल का पहला दिन बना।

हालांकि जूलियन कैलेण्डर ने काफी हद तक ऋतुओं और साल की अवधि का तालमेल बना दिया था मगर अभी कुछ समस्याएँ बच गई थीं। जैसे साल की लम्बाई को जूलियन कैलेण्डर में 365.25 दिन माना गया है मगर सौर वर्ष की वास्तविक अवधि 365.2422 दिन है। अर्थात जूलियन कैलेण्डर का साल वास्तविक साल से 0.0078 दिन बड़ा था। इसके कारण कई सालों में साल और ऋतुओं के बीच तालमेल फिर गड़बड़ होने लगता था। इस समस्या को सुलझाने के लिए पोप ग्रिगोरी ने गणितज्ञों और खगोलविदों की एक समिति बनाई। इस समिति ने सुझाव दिया कि हर चौथे वर्ष में फरवरी माह में एक अतिरिक्त दिन जोड़ा जाए मगर हर 400वें वर्ष में फरवरी को 28 दिन का ही रखा जाए। पोप ने यह सुझाव स्वीकार किया और एक नया कैलेण्डर तैयार करवाया।

पोप का यह कैलेण्डर ग्रिगोरियन कैलेण्डर के नाम से प्रचलित हुआ। अगले 200-300 सालों में ईसाई धर्म को मानने वाले युरोपीय देशों ने धीरे-धीरे यह कैलेण्डर अपना लिया। बाद में गैर ईसाई देशों ने भी इसे अपना लिया।

इस कैलेण्डर में सुविधा यह है कि इसमें मौसम और कैलेण्डर का तालमेल लम्बे समय तक बना रहेगा। जब 1582 में यह कैलेण्डर लागू हुआ उस समय तक वास्तविक ऋतुएँ कैलेण्डर से 10 दिन पहले आने लगी थीं। इसलिए 1582 में 5 अक्तूबर को 15 अक्तूबर माना गया था।

आज ग्रिगोरियन कैलेण्डर दुनिया के लगभग सभी देशों का आधिकारिक कैलेण्डर बन गया है।

कोरियाः सेहे बोकमानी बाटेयूसेवो
कर्नाटकः होसा वर्शुधा शुभशयागुलू
केरलः पुतुवर्शरा आशामसकल
मलेशियाः सेलामत तहुण बहु
महाराष्ट्रः नवीन वर्शाची शुभेच्छा

नाइजीरियाः बरका दा साबूवर शेकारा
नॉर्वेः गोड न्यार
नेपालः नवो बर्शा को शुवोकामना
फिलिपीन्सः मनीगॉग बगॉग ताओन
पोलैण्डः सेजेस्लिवेगो नोवेगो राकू

पंजाबः नवें साल दीआं वधाइयाँ
रूसः नोविम गोदोम
स्पेनः फेलीज अन्नो न्यूएवो
स्वीडनः गोट न्यार
सिन्धः नयो साल मुबारक होजे

मिस्रवासियों का साल की लम्बाई मापने में बड़ा योगदान है। वहाँ साल को 360 दिनों का माना जाता था। उन्होंने साल को तीन मौसमों में बाँटा – बाढ़, बुआई और कटाई का समय। हर मौसम में चार महीने थे। लेकिन जल्द ही उन्होंने पाया कि 365 दिन साल की सही लम्बाई नहीं दर्शाते हैं। इसका एक प्रमुख आधार था सिरियस तारे का लगातार अवलोकन।

सिरियस नाम के तारे को मिस्र में एक देवी से जोड़कर देखा जाता था। एक पुजारी उसके उगने को ध्यान से देखा करता था। पूर्वी क्षितिज पर यह तारा किस समय उगता उसे वह नोट करता। हर दिन सूरज उगने के समय आकाश में उसकी स्थिति पर भी उसकी नज़र बनी रहती। उसने पाया कि धीरे-धीरे सिरियस सूरज उगने के पहले ही क्षितिज पर दिखने लगा है। और उसके बाद तो हर दिन वह सूरज उगने तक आकाश में काफी ऊँचाई पर दिखता है।

लगभग एक साल बाद वह पश्चिमी क्षितिज पर सूरज डूबने के वक्त दिखता। यहाँ यानी पश्चिमी क्षितिज पर भी वह कुछ ही दिन दिखता, फिर गुम हो जाता। मिस्रवासियों ने लम्बे समय तक उसका अवलोकन किया और पाया कि 365¼ दिन बाद वह तारा फिर से दिन उगने के साथ क्षितिज पर नज़र आता है।

अगर मिस्रवासी अपने कैलेण्डर में इस बदलाव को किसी तरह दर्ज कर लेते कि एक साल में 365¼ दिन होते हैं तो उनका कैलेण्डर सही के एकदम करीब होता।

चुक मुंग नाम मोइ

श्रीलंकाः सुभ अलुत अवरुधक वेवा

तमिल नाडुः एनिया पुतान्डू नलवजतुक्कल

थाइलैण्डः सवाडी पी माइ

वियतनामः चुक मुंग नाम मोइ

सफदर हाश्मी

मच्छर पहलवान

बात की बात
खुराफात की खुराफात
बेरिया का पत्ता
सवा सत्रह हाथ
उसपे ठहरी बारात
मच्छर ने मारी एड़
तो टूट गया पेड़
पत्ता गया मुड़
बारात गई उड़

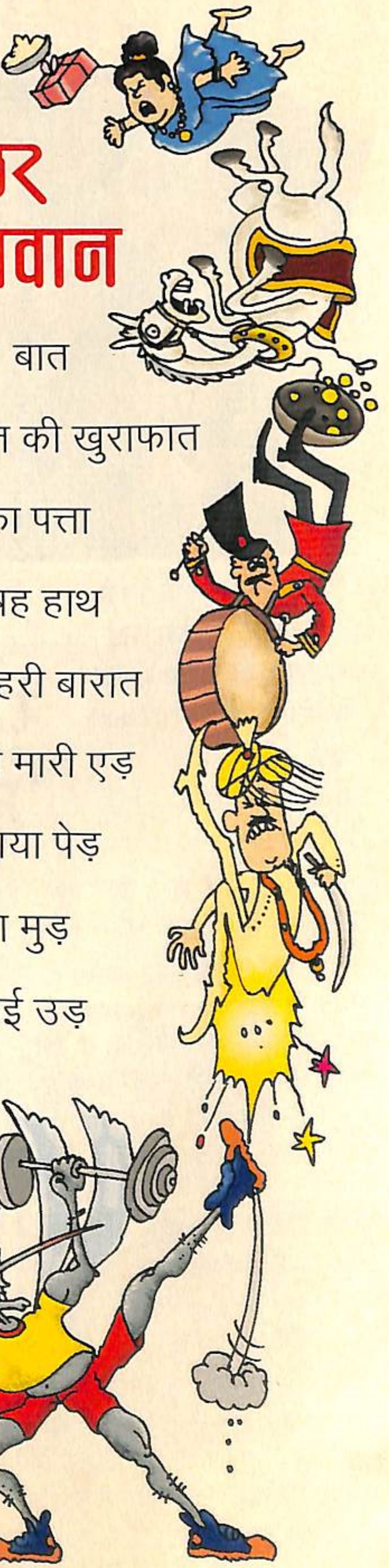

चित्रः अतनु राय

मिहिर

तारे ज़मीं पर...

"देखो देखो क्या वो पेड़ है
चादर ओढ़े या खड़ा कोई
बारिश है या आसमान में
छोड़ दिए हैं नल खुले कहीं
खुल के सोचें आओ
पंख ज़रा फैलाओ
रंग नए बिखराओ
चलो चलो चलो चलो नए ख्वाब बुन लें....."

tAAre zameeN Par

यह मज़ेदार कविता है आमिर खान की नई फिल्म *तारे ज़मीं पर* से। अब आमिर खान को तो तुम सब जानते ही हो। अरे वही *लगान* के भुवन या *रंग दे बसन्ती* के डी.जे. या लम्बे-लम्बे बालों वाला मंगल पाण्डे। वे एक निर्देशक के रूप में अपनी पहली फिल्म लेकर आए हैं – *तारे ज़मीं पर*। फिल्म एक बच्चे के बारे में है – उसकी दुनिया के बारे में, उसके दोस्तों के बारे में, उसके ख्वाबों के बारे में। आमिर फिल्म में निर्देशन के अलावा अदाकारी भी कर रहे हैं। फिल्म में वे एक टीचर का किरदार निभा रहे हैं। आमिर मशहूर हैं अपनी हर फिल्म में किरदार के अनुरूप नया हेयर स्टाइल बनवाने को लेकर।

तारे ज़मीं पर के गीतकार प्रसून जोशी इससे पहले *रंग दे बसन्ती* से बड़ा नाम कमा चुके हैं। उनकी मशहूरी एक "एड गुरू" के रूप में भी खूब है। प्रसून के गीत एकदम ऐसे हैं जैसे सीधे तुम्हारी मनपसन्द कविता की किताब से चुरा लिए हों! और सभी में वही बदमाशी है जो तुम्हें और मुझे पसन्द आती है। ऐसा ही एक बदमाश-सा, आँखें मलता गाना है "जमे रहो..."। इसमें एक तरफ एक हरदम तैयार, आज्ञाकारी बच्चे की दुनिया है और दूसरी तरफ एक शैतान लेकिन मज़ेदार दुनिया का नज़ारा है। सुनो...

"यहाँ अलग अन्दाज़ है
जैसे छिड़ता कोई साज़ है
हर काम को टाला करते हैं
ये सपने पाला करते हैं...
तितली से मिलने जाते हैं
ये पेड़ों से बतियाते हैं
ये हवा बटोरा करते हैं
बारिश की बूँदें पढ़ते हैं।"

अब बताओ तुम्हारी दुनिया की तस्वीर इनमें से किससे ज़्यादा मिलती है? मैं अपने मन की कहूँ तो मेरा बचपन तो इन्हीं के बीच कहीं है। हाँ, थोड़ा-सा दूसरी तस्वीर की तरफ झुका।

तारे ज़मीं पर का संगीत शंकर-एहसान-लॉए का है। हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटक शास्त्रीय संगीत के साथ पश्चिमी रॉक का संगम कर इन्होंने फिल्म संगीत को एक नया आयाम दिया है। शंकर महादेवन खुद एक गायक हैं और एहसान नूरानी तथा लॉए मैंडोसा वेस्टर्न रॉक के माहिर। ए. आर. रहमान के साथ आई यह नई धारा आज हर उम्र के लोगों की पसन्द बन चुकी है। आखिर "कजरारे-कजरारे" की धुन को कौन भूल सकता है!

तुम अगर इन्टरनेट के जाल से जुड़े हो तो फिल्म की वेबसाईट www.taarezameenpar.com देख सकते हो। और खुद आमिर खान से उनके ब्लॉग www.aamirkhan.com पर बात कर सकते हो।

तो बताना कि कैसे लगे ये गाने?

मुलाकात खेलों की दुनिया के तीन सितारों से...

सायना नेहवाल

सायना हमारे देश की बैडमिंटन स्टार हैं। इत्तेफाक से वे भी सानिया के शहर हैदराबाद की हैं। हालांकि सायना के माता-पिता हरियाणा मूल के हैं। और दोनों उस प्रान्त के बैडमिंटन चैम्पियन रह चुके हैं।

सत्रह साल की सायना अन्तर्राष्ट्रीय चार सितारा प्रतियोगिता जीतने वाली पहली भारतीय खिलाड़ी हैं। 2006 में उन्होंने फिलिपीन्स ओपन जीता। इसी साल वे विश्व जूनियर बैडमिंटन प्रतियोगिता के फाईनल में पहुँचीं। छोटे कद की सायना प्रतिद्वन्द्वियों के बीच अपनी तेज़ रफ्तार और शक्तिशाली प्रहार के लिए जानी जाती हैं। एक साल पहले भारतीय राष्ट्रीय प्रतियोगिता जीतने के बाद उनका शुमार दुनिया की सर्वश्रेष्ठ 22 बैडमिंटन खिलाड़ियों में हुआ।

डोला बैनर्जी

आज तीरन्दाज़ी की विश्व चैम्पियन हैं डोला बनर्जी। 2007 के विश्व कप फाइनल में उन्होंने एकल महिला प्रतियोगिता का स्वर्ण पदक जीता था। यह कारनामा करने वाली वे पहली भारतीय तीरन्दाज़ हैं। कोलकाता में रहने वाली 27 वर्षीय डोला ने 2005 में पहली बार इतिहास रचा था। इसमें उन्होंने 18वीं स्वर्ण तीर ग्रॉ प्री प्रतियोगिता जीती। इसी वर्ष उन्हें अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 2006 में भी उन्होंने सैफ खेलों का महिला एकल तीरन्दाज़ी का स्वर्ण पदक जीता था। आने वाले बीजिंग ऑलम्पिक में वे शायद फिर इस पदक पर कब्ज़ा कर लें। आमीन!

जोश्ना चिन्नप्पा

स्क्वैश की दुनिया में भी हमारी एक स्टार बड़ा नाम कमा रही है। हम जोश्ना चिन्नप्पा की बात कर रहे हैं। चेन्नई की 21 वर्षीय जोश्ना फिलहाल दुनिया के सर्वश्रेष्ठ 45 खिलाड़ियों में शामिल हैं। पाँच साल पहले जब वे जूनियर खिलाड़ी थीं, उन्होंने स्क्वैश की दुनिया में हलचल मचा दी थी। उस वक्त वे 17 साल से कम उम्र की सर्वश्रेष्ठ महिला खिलाड़ी थीं। ब्रिटेन और एशियाई जूनियर प्रतियोगिताओं का खिताब जीतने के अलावा वे भारत की जूनियर और सीनियर स्क्वैश चैम्पियन भी थीं।

सुशील जोशी

चिड़िया धूल में क्यों नहाती है?

यह तो सबने देखा है कि कई पक्षी धूल में पंख फड़फड़ाते हैं और इतनी ज़ोर से फड़फड़ाते हैं कि उनका पूरा शरीर धूल में सन जाता है। इंसान का बच्चा ऐसा करे तो पिटाई होगी मगर वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि चिड़िया धूल में नहा रही है। वे तो यह भी कहते हैं कि इससे चिड़िया को बहुत फायदा होता है। चिड़िया का धूल स्नान देखकर किसी ने इसका सम्बन्ध आने वाले मौसम से भी जोड़कर कहा है:

अण्डा ले चींटी चढ़े चिरिया न्हावे धूर, तो बरखा भरपूर।

चिड़िया धूल में नहाए तो उसे कुछ फायदा हो न हो, भरपूर बारिश की उम्मीद की जा सकती है। वैसे यह तो कहावत है, किसी ने इसकी जाँच नहीं की है।

पक्षियों से प्रेम करने वाले बताते हैं कि कम से कम 200 प्रकार के पक्षी धूल स्नान करते हैं। इनमें गोरैया के अलावा मुर्गियाँ, तीतर-बटेर, बया वगैरह भी शामिल हैं। पक्षियों के जीवन में धूल स्नान के महत्व को देखते हुए पक्षियों से सम्बन्धित कई किताबों में पक्षी प्रेमियों को यह सलाह दी जाती है कि यदि वे चाहते हैं कि पक्षी उनके घर आएँ, तो उनके लिए दाने-पानी के अलावा धूल स्नान की जगह भी बनाएँ। तो मेरे मन में सवाल यह आया कि पक्षी ऐसा करते क्यों हैं? या उन्हें इससे क्या फायदा होता है?

मुझे इसके बारे में ज़्यादा पता नहीं चला मगर इतना ज़रूर पता चला कि कई जानवर खुद को साफ रखने के कई उपाय करते हैं। जैसे, बिल्लियाँ जीभ-स्नान करती हैं। रोज़ाना कई बार बिल्ली अपने बदन को चाटती है। यह भी एक किस्म का स्नान है। इस तरह बिल्ली अपने बदन के अधिकांश हिस्सों को तो चाट लेती है, मगर सिर और कान के पीछे जैसे कुछ हिस्से वह चाट नहीं पाती है। इनकी सफाई के लिए वह पहले अपने पंजे को जीभ से गीला करती है और फिर उस पंजे से इन जगहों की सफाई करती है। चमगादड़ भी ऐसा ही करते हैं। सबसे अचरज की बात तो यह पता चली कि मछलियों को भी कुछ जुगाड़ करना पड़ता है। तुम्हें भी अचरज हो रहा होगा कि पानी में रहने वाली मछली को भी खुद की साफ-सफाई का इन्तज़ाम करना पड़ता है। मैंने पढ़ा कि इसके लिए मछली पानी में किसी पेड़ या चट्टान वगैरह से घिसटकर तैरती है।

मगर चिड़िया पर लौटना चाहिए। ऐसा बताते हैं कि धूल स्नान करने से पक्षी शरीर पर बसने वाली जुँओं, पिस्सुओं वगैरह से निजात पा लेते हैं। होता यह है कि जब पक्षी अपने पंख खोलकर धूल में फड़फड़ाते हैं तो खूब धूल उड़कर उनके "रोम-रोम" में घुस जाती है। यह धूल पंखों में फँसी जुँओं और पिस्सुओं के साँस लेने के छेदों में भर जाती है और उनका दम घुट जाता है। जी भरकर धूल उड़ा लेने के बाद पक्षी फिर से पंख फड़फड़ाते हैं जिससे धूल के साथ-साथ कीड़े वगैरह भी झड़ जाते हैं। वैसे धूल स्नान जुँओं वगैरह से मुक्ति दिलाता है इसका कोई प्रमाण नहीं है।

यहाँ एक बात बताना बहुत ज़रूरी है। पक्षियों में दो तरह के पंख होते हैं। एक वे जो उनके परों या डैनों के हिस्से होते हैं। ये उड़ने के काम आते हैं। दूसरी तरह के पंख पूरे शरीर पर फैले होते हैं। इन्हें अँग्रेज़ी में बॉडी फेदर (body feather) कहते हैं। जब पक्षी धूल स्नान करते हैं तो वे कोशिश करते हैं कि ये बॉडी फेदर रोंगटों की तरह खड़े हो जाएँ और चमड़ी खुल जाए ताकि धूल चमड़ी तक पहुँचे।

वैसे एक कारण और पता चला। पक्षियों के पंखों के नीचे तेल ग्रंथि होती है जिससे तेल निकलता रहता है। यह तेल अपने आप पंखों पर फैलता है और पक्षी अपनी चोंच की मदद से भी इसे सारे पंखों पर फैलाते हैं। पानी में रहने वाले पक्षियों के लिए तो यह तेल प्राणरक्षक होता है। इसी के

कारण उनके पंख पानी में भीगते नहीं हैं। मगर ज़मीन पर रहने वाले पक्षियों में भी तेल निकलता रहता है। कई बार पंखों पर बहुत ज़्यादा तेल हो जाता है। धूल में नहाकर वे इस अतिरिक्त तेल से मुक्ति पा लेते हैं। एक प्रयोग में देखा गया कि यदि बटेर को धूल स्नान न करने दिया जाए तो उनके पंख तेलीय हो जाते हैं और उलझ जाते हैं।

यह भी बताते हैं कि तेल ज़्यादा हो तो परजीवी कीट ज़्यादा आते हैं। परजीवी मतलब ऐसे कीट जो पक्षी को नुकसान पहुँचाते हैं। ये पक्षी का खून तक चूस सकते हैं या सिर्फ खुजली पैदा कर सकते हैं। मगर होता यह है कि अच्छे धूल स्नान के बाद सारा तेल हट जाता है। तब पक्षी अपनी पूँछ के पास स्थित तेल ग्रंथि से चोंच को भिगो-भिगोकर पूरे शरीर के पंखों की तेल मालिश करता है। यानी स्नान के बाद सजने का भी रिवाज़ है पक्षियों में।

जूल स्नान का एक फायदा यह भी बताया जाता है कि इससे शरीर के तापमान को नियंत्रित किया जाता है। वैसे यह बात मेरे गले नहीं उतरी। यह भी कहते हैं कि जब पक्षी को चमड़ी पर खुजली या जलन होने लगती है तो वह धूल स्नान करता है ताकि वह पदार्थ हट जाए जो तकलीफ दे रहा है।

बस अभी तो इतना ही पता चला है। और चलेगा तो फिर बताऊँगा।

व्हाइट आइ
फोटो: नवेन्दु लाड

बुलबुल के बच्चे

बुलबुल के थे अण्डे तीन
उनसे निकले बच्चे तीन।
माँ उनको नादान समझती
लेकिन वे हैं बड़े ज़हीन।
कल तक देख नहीं पाते थे
चीं चीं चीं चीं चिचियाते थे।
लेकिन आज इरादे उनके
उड़ जाएँ लंका या चीन।
लगने लगा घोंसला छोटा
दाने दुनके का भी टोटा।
चोंच खोल चिल्लाते रहते
खाने के बेहद शौकीन।
जब कोई भी आहट आती
गर्दन तान फुलाते छाती।
चुप रहना या पीछे हटना
लगे उन्हें अपनी तौहीन।

गिरिजा कुलश्रेष्ठ

चित्रः अतनु राय

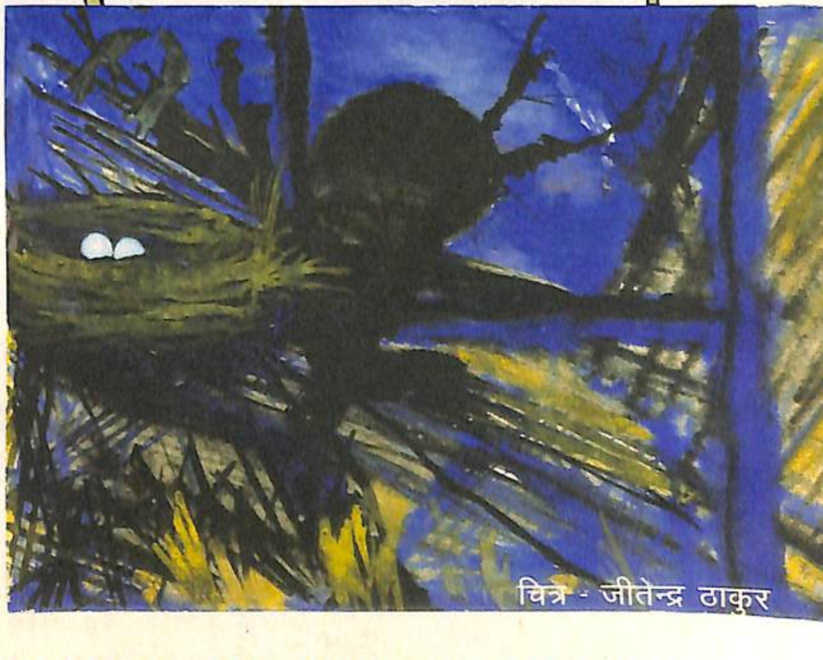

चित्र - जीतेन्द्र ठाकुर

तेजी ग्रोवर

चित्रः उत्सुक शर्मा

चित्रः तेजी ग्रोवर

एक दिन...

उत्सुक जब स्कूल से घर लौटा तो यूनिफॉर्म पहने-पहने ही चित्र बनाने बैठ गया। मैं उसे देखते ही समझ गई कि मैं ठीक समय उनके घर पहुँची हूँ। उत्सुक ने फिर जल्दी ही चित्र बनाना शुरू किया और मैं हमेशा की तरह बड़ी सावधानी से उसे चोरी-चोरी देखने लगी। लेकिन उस दिन उत्सुक ने मेरी चोरी पकड़ ली और वह मुझसे सख्त नाराज़ हो गया। "तेजी अम्मा," वह बोला, "जब आप बैठकर कुछ लिख रही होती हैं, तो क्या मैं आपको देखता हूँ?"

"नहीं, उत्सुक, आयम सॉरी, लेकिन मैं क्या करूँ? मैं देखना चाहती हूँ कि तुमसे ये चित्र कैसे बन जाया करते हैं?" उत्सुक ने थोड़ा सोचकर जो जवाब दिया वह यह था, "पहले मैं रंगों के बारे में सोचता हूँ कि आज किन रंगों से चित्र बनाना चाहता हूँ। जब मैं पेंटिंग करना शुरू करता हूँ तो अपने हाथों के पीछे-पीछे चलता रहता हूँ, बस।" पेंटिंग के बारे में मैंने इतनी विचित्र बात पहले कभी नहीं सुनी थी। तभी उत्सुक फिर बोला, "लेकिन आप खुद ही क्यों नहीं देख लेतीं? यह लीजिए शीट और ये रहे रंग। आप खुद ही बनाकर देख लीजिए कि चित्र बनाना कैसा होता है।"

मैंने शुरू किया, तुरन्त, जैसे बचपन से लेकर सैंतालीस साल की उम्र तक मैं इसी एक क्षण की प्रतीक्षा में थी। मुझसे चित्र जैसा कुछ बन रहा था और नौ साल का उत्सुक मेरी ओर न देखने की नाकाम कोशिश कर रहा था। लिहाज़ा पिछले चार साल से लगातार मैं अपने हाथों को चित्र बनाने दे रही हूँ, उन्हें सोचने दे रही हूँ, और उन्हें पूरी तरह से महसूस कर रही हूँ। लेकिन इस बीच उत्सुक का बहुत-सा समय स्कूल में या होम-वर्क करने में निकल रहा है। जिससे मेरे मन में दुख पैदा होता है।

नदिया जैसे बहें

जिसके राज में रहें
ना, उसके जैसी कहें
ऊँट बिलाई ले गई
ना, हाँजी हाँजी कहें
पर्वत से नीचे को
नदिया जैसे बहें

रमेशदत्त दुबे

चित्रः अतनु राय

मियाँ जी-चिंया जी

साबुनदानी, मसालेदानी, चायदानी, पानदानी, खानदानी, यह सब तो सुना होगा पर मुहावरेदानी कभी न सुना होगा। जैसे मसालेदानी से मसाले निकलते हैं, वैसे ही मुहावरेदानी से मुहावरे निकलते हैं। हमारे मोहल्ले के मियां जी और चिंया जी की ज़बान ज़रा खुल जाए तो समझिए मुहावरेदानी का ढक्कन खुल गया। एक सुबह अम्मी जान ने मुझे अण्डे लेने भेजा। रास्ते में ज़रा दूर बीच सड़क पर मियां जी और चिंया जी की मुहावरेदानियों के ढक्कन खुले पड़े थे। और उससे मुहावरे निकल-निकलकर हवा में उड़ रहे थे। अब जो वाकया हुआ सो सुनोः

मियां जी चिंया जी पर चिंघाड़ रहे थे, "अन्धे हो! दिखता नहीं क्या? साइकिल ऊपर चढ़ाए जा रहे हो, चढ़ाए जा रहे हो?"

चिंया जी भी दहाड़ रहे थे, "आसमान सर पर न उठाओ मियां। साइकिल चढ़ा ही देता तो इतना आग बबूला न होते।"

मियां जी भी अब तैश में थे, "तो भई चिंया, क्या राह चलते किसी राहगीर को सरे राह कुचल डालोगे? ये तो वही मिसल हुई ...क्या कहते हैं वो उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे।" चिंया जी के सब्र का घड़ा भर गया। उन्होंने नहले पर दहला फटकारा, "देखिए मियां जी, इस तरह आप नाकुछ-सी बात को हवा दे रहे हैं। बात अब हद से आगे बढ़ चुकी है, पानी सर से गुज़रने लगा है। मैं अब अगर अपनी पर आ गया तो आप जो तूफान मचा रहे हो कहीं दीयों में न दिखोगे।" मियां जी बोले, "ललकारो मत ललकारो मत चिंए। खुदा कसम मेरा खून खौल गया तो कोहराम मच जाएगा। भलाई इसी में है कि अब तुम रफूचक्कर हो जाओ।"

चिंया जी ने ऐसी धमकी भरे बाज़ार पहली बार सुनी थी। भीड़ अलग से जमा हो गई थी। चारों ओर नज़र घुमाने के बाद बोले, "मैं कहता हूँ दफा हो जाओ। गज़ब हो जाने वाला है यहाँ। कयामत आ जाने वाली है।"

इतने में एक पुलिसवाला सबको हड़काता हुआ उधर आया, "ऐ हटो सब। हटो फौरन। क्यों बवाल मचा रक्खा है? कौन बखेड़ा कर रहा है इधर?"

एक ही पल में सारा नज़ारा बदल गया। सब लोग सुरक्षित जगहों की ओर लपके। मैं भी आधा सेर टिण्डे लेकर घर पहुँचा। भूख लगी थी। घर पहुँचते ही खाने बैठ गया। मगर खाने की जगह अम्मीं जान ने गरमा-गरम डाँट खिलाई, "अरे बेवकूफी के पुतले, तुझसे अण्डे मँगवाए थे न कि टिण्डे।"

पुस्तक अंश

लिसबेत की नाक में मटर का दाना

अब सर्दियाँ आने को थीं, और हर गुरूवार मार्दी के घर में मटर का सूप बना करता था। लेकिन लिसबेत हर गुरूवार अपनी नाक में मटर का दाना थोड़े ही फँसाती थी। वो तो उसने बस पहली बार किया था। वैसे लिसबेत की बड़ी अजीब आदत थी, जो चीज़ जहाँ नहीं होनी चाहिए उसे वहाँ ठूँसने की। एक बार उसने अल्मा के कमरे की चाबी पोस्ट बॉक्स में डाल दी थी, और एक बार मम्मी की अँगूठी अपनी गुल्लक में डाल दी थी, ताकि उसे कोई छू न सके। एक दिन उसने पापा का टूथपेस्ट खाली बोतल में फँसा रखा था। वो यह सब शरारत में नहीं करती थी। वो तो सिर्फ जानना चाहती थी कि ऐसा करने से क्या होता है? चीज़ें कभी-कभी ऐसे फँस जाती थीं जैसे आपने कभी सोचा भी न हो, तब बड़ा मज़ा आता। अब भी ऐसा ही हुआ था। उसे रसोईघर में ज़मीन पर एक मटर का दाना गिरा पड़ा दिखा। न जाने क्या सोचकर उसने उसे तपाक से अपनी नाक में डाल लिया। उसे सिर्फ देखना था कि वह अन्दर जाता है या नहीं। वह चला गया। काफी अन्दर चला गया।

फिर उसने उसे बाहर निकालने की कोशिश की। उसका काम तो हो गया था। लेकिन वह मटर बाहर आने को तैयार नहीं था। वह जहाँ था, वहीं रुका रहा। लिसबेत ने अपनी उँगली काफी गोल-गोल घुमाई, पर वह बाहर नहीं आया। लिसबेत ने मार्दी से मदद माँगी। उसने भी कोशिश की, पर वह बाहर निकला नहीं।

"मम्मी, मेरी नाक में मटर चला गया है, उसे निकाल दो! अभी, इसी वक्त! मुझे नहीं चाहिए।"

"शायद उसने वहाँ जड़ पकड़ ली है," मार्दी ने कहा। अब देखना, जल्दी ही तेरी नाक से मटर निकलने लगेंगे।

सुनते ही लिसबेत चिल्लाने लगी। उसे मटर पसन्द तो थे पर उनका बेल पर उगना ही सही था, नाक से नहीं। उसकी अपनी नाक से तो बिल्कुल ही नहीं। वह चीखती-चिल्लाती मम्मी के पास गई।

"मम्मी, मेरी नाक में मटर चला गया है, उसे निकाल दो! अभी, इसी वक्त! मुझे नहीं चाहिए।"...

(माँ के सिर में दर्द था इसलिए उन्होंने दोनों को डॉक्टर के पास जाने को कहा।)

..."चलो मार्दी, जल्दी से जाएँ!" लिसबेत ने कहा। उसे लग रहा था, पता नहीं कब नाक से मटर उगने लगे और फलियाँ झूलने लगें। अगर यह डॉक्टर के पास पहुँचने से पहले ही हो जाता है तो लोग उसे सड़क पर चलते देख हँसने लगेंगे। मार्दी ने उसका साहस बढ़ाने की कोशिश की। मान लो ऐसा हो भी जाता है, तो भी आफत की कोई बात नहीं है।

"तब तुम उसे चुपचाप काट देना, जब कोई देख न रहा हो, और अपनी जेब में ठूँस देना!" मार्दी ने कहा। लिसबेत उन लड़कियों में से नहीं थी जो एक मटर को लेकर रोंदू की तरह बार-बार शिकायत करती रहती हैं। वह अब डॉक्टर के पास जा रही थी, और मटर समझ लो निकल ही चुका था। उसे इस बात की खुशी भी हो रही थी कि वह मार्दी के साथ बाज़ार जा रही थी। डॉक्टर का दवाखाना बाज़ार में था।

"मज़ा भी तो आएगा! आओ मार्दी, चलें!" लिसबेत ने कहा। डॉक्टर के दवाखाने तक का रास्ता लम्बा था। वह शहर के बीच चौक में था और मार्दी का घर गाँव से बाहर था।

मार्दी ने लिसबेत का हाथ अच्छी तरह पकड़ रखा था। मम्मी देखतीं तो खुश हो जातीं कि उनकी दो बेटियाँ कितने प्यार से और ज़िम्मेदारी से अपने आप डॉक्टर के पास जा रही थीं।

"तू कभी-कभी पागलों जैसी चीज़ें करती है!" मार्दी ने बड़ों की तरह अकलमन्दी दिखाते हुए कहा। घर में पागलों की तरह शरारतें करने के लिए सबसे ज़्यादा डाँट किसको पड़ती है, यह वह भूल गई थी। लेकिन लिसबेत के साथ इतनी दूर शहर जाना उसे अच्छा लग रहा था। उसने उसे और डाँट-फटकार नहीं सुनाई।

"तू कभी-कभी पागलों जैसी चीज़ें करती है!"

सड़क सूखे पत्तों से भरी पड़ी थी। उस पर चलने में मज़ा आ रहा था। पत्ते पैर के नीचे आते तो "कर्र कर्र" की आवाज़ आती। मार्दी और लिसबेत उन पर ज़ोर-ज़ोर से पैर जमाती चल रही थीं। उनके चेहरे लाल हो गए थे। हवा में ठण्डक थी। अब बगीचे में सारे फूल सूख गए थे। इससे भी लिसबेत को तसल्ली मिल रही थी। फूलों का, नए पौधों का मौसम खत्म हो रहा है, तो ज़ाहिर है कि अब मटर भी नहीं आएँगे।...

(रास्ते में इनकी प्यारी ईडा का घर पड़ता था। सो उनके घर पहुँचीं ये। ईडा का घर खुला था पर वो घर पर न थी। ये वहाँ बैठीं ही थीं कि...)

..."मैं अभी आई," मार्दी से कहकर लिसबेत वहाँ से निकल गई। लिसबेत बगीचे से निकलकर मैटी के घर की तरफ गई। मैटी के हाथ में एक छुरी थी जिससे वह लकड़ी के एक टुकड़े पर कुछ कर रही थी। उसने ऐसा जताया कि जैसे लिसबेत को देखा ही न हो। लिसबेत अच्छी बच्ची की तरह धीरे-धीरे उसके पास जाकर थोड़ी दूर खड़ी हो गई। वह मैटी के कुछ कहने का इन्तज़ार कर रही थी। मैटी ने उसे देखकर ज़ोर से कहा, "गन्दी बच्ची!" और वह लकड़ी के टुकड़े को तराशती रही।

लिसबेत को गुस्सा आया। अगर कोई गन्दा था तो वह मैटी थी, पता नहीं कब नहाई थी।

"तू ही है गन्दी बच्ची, सूअरनी!" लिसबेत ने कहा और फिर डर गई क्योंकि मैटी उससे बड़ी थी और तेज़ दिमागवाली और खतरनाक लग रही थी।

"एक झापड़ लगाऊँ तो उड़ जाएगी। लगाऊँ?" मैटी ने पूछा। लिसबेत चुप रही और पीछे हटकर अपनी जीभ निकालकर मैटी को चिढ़ाया। जवाब में मैटी ने भी जीभ निकालकर मुँह बनाते हुए कहा, "मेरे पास तो दो खरगोश हैं, तेरे पास कुछ नहीं। तेरे मुँह में कीड़े, तेरे मुँह में धूल।"

लिसबेत ने "तेरे मुँह में कीड़े, तेरे मुँह में धूल" पहले कभी नहीं सुना था। लेकिन अगर मैटी कह रही थी तो ज़रूर वह कोई लड़ाई-झगड़े की बात होगी। लिसबेत नए शब्द फटाक से सीख लेती थी।

"मेरे पास एक बिल्ली है, गूडी जो तेरे पास नहीं है, तेरे मुँह में कीड़े, तेरे मुँह में धूल," उसने कह डाला।

"हाँ, हाँ! बिल्ली चाहता कौन है? मुझे कोई मुफ्त में दे तो भी मैं न लूँ।" एक पल शान्ति रही। फिर मैटी और लिसबेत गुस्से से एक-दूसरे को देखती रहीं।

"मेरा एपेंडिक्स का ऑपरेशन हुआ है। मेरे पेट पर लम्बा निशान है। तेरे पास तो है नहीं! तेरे मुँह में कीड़े, तेरे..." यह लिसबेत के लिए काफी था। उसने जल्दी से सोचा। पेट पर निशान के मुकाबले के लिए उसके पास क्या था? हाँ, एक बात थी तो सही।

"मेरी नाक में मटर है, तेरे पास नहीं! तेरे मुँह में कीड़े...." मैटी ने तुच्छता से उसकी तरफ देखा और हँसकर बोली, "मटर? मेरे घर में इतने सारे मटर हैं कि मेरी नाक भर सकती है। उसमें कौन-सी बड़ी बात है?"

लिसबेत को अजीब-सा लगने लगा। "अगर वहाँ मटर की बेल उग जाती है...." लेकिन यह कहते हुए वह चुप हो गई। जो बेल उसे चाहिए नहीं थी उसके बारे में क्या डींगें हाँकना!

तभी लिसबेत ने देखा कि मैटी सीढ़ियों पर बैठी स्वेटर की बाँह पर नाक रगड़ रही है। यह देखते ही उसने कहा, "पता है क्या, तेरी नाक गन्द से इतनी भरी है कि उसमें मटर घुस ही नहीं सकते।" यह सुनकर मैटी का पारा चढ़ गया।

"अब दिखाती हूँ मैं, कि कौन क्या है!" वह चीखी और लिसबेत की तरफ दौड़ी। लिसबेत ने उसे मारकर खुद को बचाने की कोशिश की, पर मैटी में ताकत ज़्यादा थी। उसने लिसबेत को मुक्के मारे और हाथ पकड़कर उसे दीवार में

चीनने लगी। लिसबेत ने जितनी ज़ोर से हो सका, मार्दी को पुकारा, "मार्दी! मार्दी!"

लिसबेत इस तरह का व्यवहार क्यों बरदाश्त करती, जब उसके पास मार्दी जैसी बहन हो! मार्दी को लड़ना आता था। उसे गुस्सा आता था तो वह बगैर सोचे-समझे काफी कुछ कर बैठती थी। मम्मी जो मर्ज़ी है कहें, उस पर कोई असर नहीं होता था। "लड़कियों को मार-पीट कभी नहीं करनी चाहिए," मम्मी ने बता रखा था। लेकिन ऐसी बातें मार्दी को हमेशा बाद में, सब कुछ करने के बाद, याद आती थीं। उसके बाद वह फौरन पछताती थी, और सोच लेती थी कि फिर कभी नहीं लड़ूँगी। लेकिन अब जब उसने देखा कि कोई उसकी बहन पर हमला कर रहा है तो वह चुप कैसे रह सकती थी। वह लड़ाई के लिए तैयार बकरे की तरह भागती वहाँ आ गई। देखते ही देखते उसने मैटी को ऐसा घूँसा रसीदा कि वह लड़खड़ाती हुए पीछे गिर गई।

"तेरे मुँह में कीड़े, तेरे मुँह में धूल!" लिसबेत ने कहा।

"तेरे मुँह में कीड़े, तेरे मुँह में धूल!" लिसबेत ने कहा।

लेकिन मैटी की भी बड़ी बहन थी।

"मीता!" उसने पुकारा, "मीता!"

अब सोचो, वहाँ किसको आना था। वह तो मीता निकली, जो मार्दी की क्लास में पढ़ने वाली जूओं वाली लड़की थी।

मैटी ने मार्दी की तरफ इशारा कर कहा, "उसने मुझे मारकर गिरा दिया।"

"गन्दी सूअरनी, लड़ाई तूने शुरू की थी!" लिसबेत चिल्लाई। पर तब तक देर हो चुकी थी। मार्दी और मीता एक-दूसरे पर टूट पड़ी थीं।...

(इतने में ईडा वहाँ पहुँच गई। उन्हें पौंछा-पाँछा। कुछ खिलाया, गाने सुनाए। फिर घर जाने को कहा।)

...मार्दी को याद आया! मटर! डॉक्टर! पता नहीं वे कैसे भूल गई थीं कि वे घर से किस काम से निकली थीं!

"चल लिसबेत, चल जल्दी से, हमें तो डॉक्टर के यहाँ जाना था।" ईडा देखती रह गई।

"मेरा यह मतलब नहीं था कि तुम्हें भगा दूँ, रुको तो सही!" लेकिन अब मार्दी और लिसबेत कैसे रुकतीं! जैसे-तैसे जूते पहनकर वे भागने लगीं। पाँच मिनट में वे डॉक्टर के पास पहुँच गईं। मार्दी की नाक से खून आने लगा था। जब डॉक्टर ने उन्हें देखा, तो एक अजीब-सी सूरत नज़र आई।

"हे भगवान!" उनके मुँह से निकला। "कहीं तुम किसी से लड़-झगड़कर तो नहीं आई हो?"

"क्या ऐसा लग रहा है?" मार्दी ने पूछा।

"हाँ!" डॉक्टर ने कहा। वे ठीक ही कह रहे थे। मार्दी की नाक सूजकर एक लाल आलू जैसी नज़र आ रही थी। डॉक्टर ने उन दोनों की तरफ देखते हुए कहा, "मुझे लगा था कि लिसबेत को कुछ हुआ है। तुम्हारी मम्मी ने ऐसा ही तो कहा था!"

"क्या मम्मी ने फोन किया था?" मार्दी ने चिन्ता भरे स्वर में पूछा।

"हाँ, बस तीन बार!" डॉक्टर ने बताया।

"ओह!" मार्दी ने कहा।

"ओह!" लिसबेत ने कहा।

"वे फिक्र कर रही थीं कि तुम दोनों गईं कहाँ?" डॉक्टर ने कहा, "उनको लग रहा था कि ज़रूर कुछ हुआ है।"

"हुआ था," मार्दी झेंपकर बुदबुदाई।

डॉक्टर ने मार्दी को कुर्सी पर बिठाया और उसकी नाक में रुई के दो गोले फँसा दिए। उसे देखकर लिसबेत हँस-हँसकर गिरने लगी।

"तू पागल-सी लगती है, मार्दी!" उसने कहा, "किसी घोंघे जैसी जिसकी नाक के आगे दो सफेद सींग होते हैं।"

लेकिन लिसबेत की बोलती अचानक बन्द हो गई। डॉक्टर ने एक डरावनी लगने वाली आँकड़ी उसकी नाक में डाली। उससे दर्द नहीं हुआ, पर गुदगुदी ज़रूर हो रही थी। पहले दाहिनी, फिर बायीं ओर, और फिर दाहिनी ओर!

"तुम्हें याद है, मटर किस तरफ डाला था?"

"इस तरफ!" लिसबेत ने दायीं ओर इशारा किया।

डॉक्टर ने फिर एक बार, ज़्यादा गहराई से उसमें आँकड़ी डालकर देखा। उससे और भी गुदगुदी हुई।

"चू! अजीब-सी बात है," उन्होंने कहा। "मुझे मटर कहीं नज़र नहीं आ रहा!"

"आएगा भी कैसे?" लिसबेत ने कहा, "वह तो मैटी से झगड़ा करते वक्त बाहर निकल आया था!" चित्रः अतनु राय

पिप्पी, एमिल, मार्दी और कार्लसन के मज़ेदार कारनामे
लेखक: आस्ट्रिड लिंडग्रेन
अनुवाद: अरुंधती देवस्थले
प्रकाशक: एकलव्य व अरविन्द कुमार पब्लिशर्स
मूल्य: 170 रुपए

इस किताब को मँगवाने के लिए *चकमक* के पते पर चिट्ठी लिख सकते हो।

बच्चों और बड़ों का भरपूर मनोरंजन करने के साथ-साथ दुनिया भर की चहेती आस्ट्रिड लिंडग्रेन अपने लेखन से कुछ और भी करती हैं। बड़े लोग बच्चों से क्या अपेक्षा करते हैं और खुद कैसा जीवन जीते हैं? बच्चों की अपनी इच्छाएँ क्या हैं और वे आस्ट्रिड लिंडग्रेन के पात्रों पिप्पी और एमिल में कैसे साकार रूप लेती हैं? पिप्पी और एमिल दरअसल बच्चों की उन इच्छाओं का जीता-जागता रूप हैं जो मनोरंजन के साथ-साथ हमें बच्चों के भीतर की दुनिया में भी ले जाती हैं। आस्ट्रिड लिंडग्रेन के मन में बच्चों से अपार प्रेम का जो भाव है और उनके आत्मीय जगत को समझने की जो अद्‌भुत क्षमता है, यही उनके लेखन को इतना जानदार बनाता है। उनका लेखन बड़े लोगों का मज़ाक भी उड़ाता है, उन पर व्यंग्य भी करता है – उन लोगों पर जो अपने बचपन को अपने भीतर जीवित नहीं रख पाते, और इस तरह बच्चों को भी ठीक से समझ नहीं पाते। वे ही बच्चों से ऐसी अपेक्षाएँ करते हैं जिन्हें बच्चे कभी पूरा नहीं कर सकते और कोशिश करते हैं कि बड़े इस बात को जान ही न पाए।

गोताखोरी और नमक

प्रयोग सामग्रीः
काँच का एक गिलास, पानी, तेल, नमक।

क्या करना होगाः
गिलास में तीन-चौथाई पानी भरो। पानी के ऊपर थोड़ा तेल उड़ेल दो। तेल की एक पतली-सी परत पानी के ऊपर तैरती दिखेगी। उस पर एक चुटकी नमक डालो। क्या हुआ?

ऐसा क्योंः
तेल की बूँद पानी में क्यों डूबती है? थोड़ी देर बाद तेल की बूँद तैरकर वापस तेल की परत में क्यों चली जाती है?

सोचने की बातः
तेल की परत पानी के ऊपर इसलिए तैरती है क्योंकि तेल का घनत्व पानी से कम है। नमक पानी और तेल से सघन है इसलिए वह पानी में डूब जाता है। डूबते वक्त नमक से चिपकी तेल की एक बूँद भी डूबती है। नमक तेल में नहीं घुलता है। पर थोड़ी देर में नमक पानी में घुल जाता है। अकेले तेल की बूँद पानी से हल्की है, इसलिए वह नमक से अलग होते ही तेल की परत में वापस चली जाती है।

इसीलिए तो बड़े जीव

भला ऐसा क्यों हुआ कि शेर, बाघ जैसे "राजा" जीवों को हाथी जितना बड़ा आकार न मिला? क्या विकास के दौरान कोई गड़बड़ी रह गई? मान लो शेर हाथी बराबर होता। तो क्या वो इतनी तेज़ दौड़कर इतना बड़ा जानवर पकड़ पाता जो उसके इतने बड़े शरीर की ऊर्जा सम्बन्धी ज़रूरत पूरी कर पाता। तुम्हारी-हमारी तरह लन्दन के प्राणी विभाग के कुछ वैज्ञानिकों की भी इसमें दिलचस्पी थी। और वे इसका पता लगाने में जुट गए।

लन्दन के क्रिस कार्बोन और उनके साथियों ने कई अलग-अलग आकार के माँसाहारी जीवों के बारे में जानकारियाँ जमा कीं। उन्होंने देखा कि ये जीव हर रोज़ कितनी ऊर्जा ग्रहण करते हैं और कितनी ऊर्जा खर्च करते हैं। जैसा सोचा था उन्होंने वैसा ही पाया। बड़े माँसाहारी जीव छोटे जीवों की तुलना में ज़्यादा ऊर्जा खर्च करते हैं। अगर किसी माँसाहारी का वज़न दुगुना हो जाए तो उसकी ऊर्जा सम्बन्धी ज़रूरतें 1.6 गुना बढ़ जाएँगी।

उन्होंने माँसाहारी जीवों को दो श्रेणियों में रखा। एक 20 किलो से कम वज़न वाले और दूसरे 20 किलो से ज़्यादा वज़न वाले। 20 किलो से कम वज़न वाले जीव ज़्यादातर चूहे, कीड़े आदि का शिकार करते हैं। यानी उनके शिकार उनके अपने आकार से काफी छोटे होते हैं। जबकि बड़े जीव लगभग अपने आकार वाले या अपने से भी बड़े आकार वाले जीवों का शिकार करते हैं। ऐसे प्राणियों को पकड़ने में काफी ताकत और ऊर्जा खर्च होती है।

वैज्ञानिकों ने देखा कि दोनों श्रेणियों के सबसे बड़े आकार वाले सभी माँसाहारियों को पर्याप्त खाना जुगाड़ने में काफी जद्दोजहद करनी पड़ती है। जैसे ध्रुवीय भालू, शेर आदि। इसलिए वे ऊर्जा बचाए रखने में लगे रहते हैं। वे आराम करते हैं, धीरे चलते हैं। उनका आकार देखकर जितना हमें लगता है, उनकी ऊर्जा पाने और खोने की दर उससे काफी कम होती है।

यह तो सम्भव है कि छोटे जीव बड़े जीवों का शिकार करने वाली रणनीति अपना लें। और विकास के क्रम में कभी इनका आकार बड़ा हो जाए। लेकिन बड़े माँसाहारियों के पास कोई बेहतर रणनीति नहीं जिसे वे अपना लें।

जमा किए गए आंकड़ों पर काम करते हुए वैज्ञानिकों ने पाया कि किसी भी माँसाहारी का वज़न अगर 1000 किलो से ज़्यादा होगा तो उसके लिए भोजन जुटाना सम्भव न होगा। वैज्ञानिकों ने यह भी पता लगाया कि अब तक के सबसे बड़े ज़मीनी माँसाहारी – छोटे मुँह के भालू – का वज़न 800 से 1000 किलो के बीच था। और आज के सबसे वज़नी माँसाहारी ध्रुवीय भालू का वज़न 300 से 600 किलो के बीच है।

विशाल माँसाहारी डायनासौर ट्रायनोसौरस रेक्स की ऊर्जा की ज़रूरत लगभग एक 1000 किलो के स्तनपायी जितनी ही थी। ये आंकड़े ज़मीनी माँसाहारियों के लिए हैं, पानी में रहने वालों के लिए नहीं।

वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि बड़े थलीय माँसाहारियों का ऊर्जा पाने और खर्चने का हिसाब-किताब

माँस नहीं खाते

इतना नपा तुला है कि इसमें ज़रा भी ऊँच-नीच हो जाए तो उन पर संकट आ जाता है। जैसे मौसम बदलने या रहवास खत्म होने का उन पर बहुत असर पड़ता है। शायह यही वजह है कि किसी समय के बड़े माँसाहारी आज हमारे बीच नहीं हैं। इससे हम कुछ अन्दाज़ तो लगा ही सकते हैं कि कौन-से जीव हैं जिनपर गुम होने का खतरा मण्डरा रहा है। चक मक

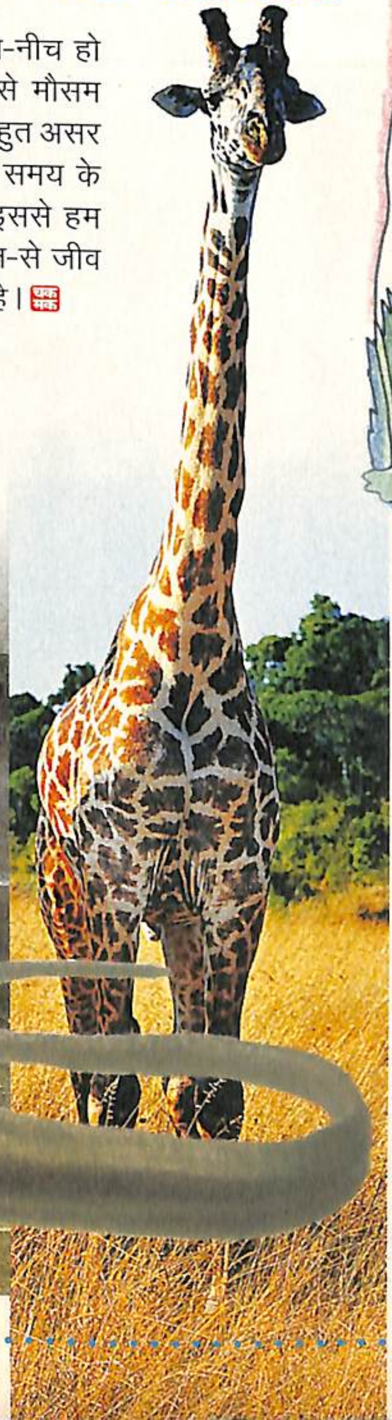

छोटी बद्दख की प्रार्थना

प्यारे ईश्वर।
जल धाराएँ दो हमें
कल और हमेशा हो बरसात
खूब सारे घोंघे दो हमें
और दूसरी भी स्वादिष्ट चीज़ें
खाने के लिए
हिफाज़त करो उन सबकी जो काँ...काँ बोलती हों
और उन सब की जो जानती हों
कैसे तैरा जाता है।

- कार्मे बर्नो दे काज़ो
अनुवाद - राजेश जोशी

चित्रः अतनु राय

नारंगी

नारंगी रंग की नारंगी
बेच रहा फलवाला गाकर
और बजाता है सारंगी

चमक रहा है छिलका पीला
सुन्दर फल है बड़ा रसीला
प्यास बुझे मन खुश हो जाता
ढीली तबियत होती चंगी

सुधा चौहान

"फोटोग्राफी पेंटिंग से बहुत अलग है। जिस क्षण हम फोटो खींच रहे होते हैं वह एक सेकण्ड का एक बहुत छोटा रचनात्मक हिस्सा होता है। जीवन ने हमारे सामने एक अद्भुत क्षण परोसा होता है जो हमारी आँख को नज़र आना चाहिए। और हमें मालूम होना चाहिए कि कब क्लिक दबाना है। यही क्षण फोटोग्राफर का रचनात्मक क्षण होता है। एक बार वो क्षण गया तो फिर गया ही, हमेशा के लिए।"

हेनरी कार्तिए ब्रेसाँ

सत्यजीत राय लिखते हैं कि ब्रेसाँ के अधिकाँश चित्र राजनैतिक घटनाओं के बारे में नहीं हैं, वे साधारण लोगों के चित्र हैं। गलियों में, बाज़ारों में, नदी के किनारे, पहाड़ों में – अकेले या समूह में – अपना रोज़मर्रा का जीवन जीते हुए लोग। ब्रेसाँ बिलकुल साधारण चीज़ को एकदम असाधारण स्तर तक उठा देते हैं, और ठीक यही है हमारे समय के इस महान फोटोग्राफर कार्तिए ब्रेसाँ की खासियत।

महात्मा गाँधी को जिस वक्त गोली मारी गई थी उससे लगभग 10-15 मिनट पहले ही ब्रेसाँ गाँधी जी से मिले थे। वे लौट ही रहे थे कि उनको इसकी खबर मिली। वे बिना देरी किए घटना स्थल पर पहुँचे। भीड़ और भागमभाग। गाँधी जी का शव एक कमरे में रखा हुआ था जहाँ पुलिस का पहरा था। कहा जाता है कि ब्रेसाँ की जब फोटो लेने की यह तरकीब नाकामयाब रही तो किसी तरह वे छज्जे तक चढ़े। थूक से वहाँ के शीशे की धूल पौंछी और फोटो खींच ली।

ईश्वर अल्ला तेरे जहाँ में....

ईश्वर अल्ला तेरे जहाँ में
नफरत क्यों है जंग है क्यों?
तेरा दिल तो इतना बड़ा है
इंसां का दिल तंग है क्यों?
ईश्वर अल्ला तेरे जहाँ में....

कदम-कदम पर सरहद क्यों है
सारी ज़मीं जो तेरी है
सूरज के फेरे करती है
फिर क्यों इतनी अँधेरी है
इस दुनिया के दामन पर
इंसां के लहू का रंग है क्यों?
ईश्वर अल्ला तेरे जहाँ में....

गूँज रही हैं कितनी चीखें
प्यार की बातें कौन सुने
टूट रहे हैं कितने सपने
इन के टुकड़े कौन चुने
दिल के दरवाज़ों पर ताले
तालों पर ये ज़ंग है क्यों?
ईश्वर अल्ला तेरे जहाँ में....

फिल्मः 1947 अर्थ
गायकः अनुराधा श्रीराम व सुजाता मोहन
संगीतकारः ए. आर. रहमान
गीतकारः जावेद अख्तर
निदेशकः दीपा मेहता

चित्रः अतनु राय

बापू की अस्थियों को गंगा में बहाने के लिए जाती ट्रेन को छूने भर के लिए उमड़ी भीड़। (ऊपर) बापू के अन्तिम दर्शन के लिए उमड़ी भीड़। (नीचे) (दिल्ली 1948)

दुनिया भर को कैमरे में कैद करने वाले को अपनी फोटो खिंचवाना सख्त नापसन्द था। इसलिए उनकी अपनी फोटो कम ही दिखती हैं। 1975 में जब ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उन्हें मानद उपाधि दी तो उन्होंने अखबार से अपना चेहरा ढाँप लिया।

जनवरी की कुछ यादें

अरुण कमल

जनवरी सुनते ही यादों की भीड़ लग जाती है। जनवरी यानी नए साल का पहला महीना। और पहले महीने की पहली तारीख। जो मिलता है वही कहता है, नया साल मुबारक हो। इतनी बधाइयाँ मिलती रहती हैं जनवरी के पूरे महीने कि लगता है सब लोग अपने हैं। चारों तरफ प्रेम है। खुशी है।

फिर जनवरी का मतलब है पूस-माघ का अपना मास। खूब ठण्ड पड़ती है। जब मैं छोटा था तो सामने की दीवार के पास धूप में खड़ा होने दौड़कर जाता था। वहीं पहली धूप आती थी। सारे बच्चे दौड़ते थे। धक्का-मुक्की भी होती थी। इसे धूप लूटना कहते।

रात में सड़क की बत्ती भी धुँधली नज़र आती। दूर से सियारों के बोलने-रोने की आवाज़ें आतीं। माँ कहती, "उन्हें ठण्ड लग रही है। कुत्तों के बच्चे भी कूँ-कूँ करते हैं। उन्हें भी ठण्ड लग रही है।" देर तक आग तापना गप्पें लगाना। जब सब घर चले जाते तो मुहल्ले के कुत्ते वहाँ सिकुड़कर सोते। और बिल्ली मौसी रसोई में चूल्हे के पास सोती। फिर सुबह होती। धूप निकलती। पूरा आसमान चिड़ियों से भर जाता।

जनवरी में फूल भी बहुत खिलते हैं। खूब लाल पॉपी, खूब पंखुड़ियों वाला डेलिया और अजीब-सी खुशबू वाली गुलदाउदी।

इस महीने खाने-पीने की जो चीज़ मुझे सबसे ज़्यादा पसन्द है वो है नया चूड़ा और नया गुड़। दोनों साथ-साथ खाना। दुनिया में इससे अच्छी मिठाई कुछ नहीं। जब मैं छोटा था तब हाफ पेंट की एक जेब में चूड़ा और दूसरे में गुड़ की भेली रखकर खेलता। एक फाँका चूड़ा मुँह में डाला, फिर गुड़ की भेली दाँत से काटी।

अब तो हर जगह जुलाई से नई कक्षाएँ शुरू होती हैं। पहले जनवरी से होती थीं। मुझे याद है, तब जनवरी का मतलब था नई किताबें जिनके कागज़ में बिस्कुट जैसी गन्ध रहती। नई कॉपियाँ। नया बस्ता। नई कक्षा। और कुछ पुराने, कुछ नए दोस्त। सब कुछ नया-नया लगता। इसके अलावा जनवरी में त्यौहार भी आते हैं। मकर संक्रान्ति इसी महीने पता नहीं क्यों हर बार चौदह जनवरी को पड़ती है।

मुझे जनवरी इसलिए भी पसन्द है कि यह अकेला महीना है जो न तो पूरा का पूरा ठण्डा है न पूरा का पूरा गर्म। आधा ठण्डा, आधा गर्म। नए साल का नया महीना। सबको मुबारक!

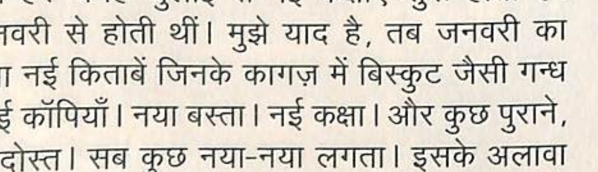

रुस्तम

मैं प्राइमरी स्कूल में था। हमारे गाँव में स्कूल नहीं था। हम खेतों में से होते हुए दो मील चलकर दूसरे गाँव जाते थे। सुबह-सुबह ही घर से निकल पड़ते थे। मैंने पतले तले वाले कपड़े के जूते पहने होते थे। मोज़ों के बारे में तो अभी हमने सुना भी नहीं था। मैं बिना बाज़ू का एक स्वेटर भी पहने रहता था। उसके ऊपर मेरी माँ एक कपड़ा लपेट देती थी और उसकी गाँठ आगे गले के पास बाँध देती थी। कभी-कभी मेरे पाजामे में घुटनों वाली जगह पर सुराख भी होते थे। पगडण्डियों पर पाला जमा होता था।

उन दिनों मैं यह हिसाब नहीं रखता था। पर सर्दी के उन भयानक दिनों में इकतीस दिन तो जनवरी के ही रहते होंगे। और अब मैं जानता हूँ कि लगभग वही इकतीस दिन सबसे ठण्डे दिन होते होंगे।

हमारा स्कूल शेरशाह सूरी की बनवाई एक उजड़ी सराय में था। सराय में लाल ईंटों के टूटे-फूटे, आधे-गिरे सैंकड़ों कमरे थे। उन्हीं में से दो-तीन कमरों की छत पर खुले में हमारी कक्षा लगती थी। हम टाट पर बैठते थे। शहर से आने वाली हमारी अध्यापिका लकड़ी की कुर्सी पर। उसने खूब सारे गरम कपड़े पहने होते थे। दो-तीन स्वेटर और उनके ऊपर शॉल। बीच-बीच में उठकर वह धड़ाम से जूते समेत अपना पैर हमारी पीठ पर मारती थी। शायद उसी से कुछ गर्मी हमें पहुँचती थी।

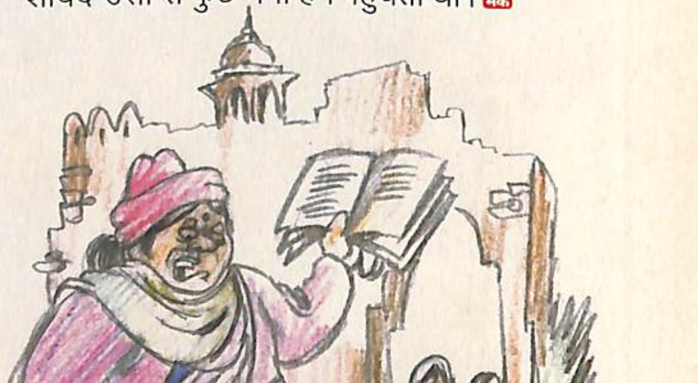

शशि सबलोक

सुनदर मुन्दरिए होए,
तेरा कौन विचारा होए,
दुल्ला हट्टी वाला होए,
दुल्ले दी तही व्यायी होए,
सेर शक्कर पाई होए...

शाम होते ही हम बच्चों की टोली निकल पड़ती। सुनदर मुन्दरिए... गाते हम घर-घर जाते। जब तक पाँच-दस पैसे न मिल जाते, हम दरवाज़े के आगे जमे रहते। फिर भी न मिलते तो हुक्के ते हुक्का, ए घर भुक्का कह आगे बढ़ जाते। टोली में शामिल होने के लिए पंजाबी होना या सुनदर मुन्दरिए आना ज़रूरी न था। बस हर बार लय-ताल में होए बोलना होता था।

हाँ, साथ-साथ में सूखी लकड़ियाँ बटोरना बदस्तूर जारी रहता। शाम की कमाई से फुल्ले (पॉपकॉर्न), रेवड़ियाँ और मूँगफली खरीदते। रात को सारा मोहल्ला जमा होता। लोड़ी जलती। फुल्ले, रेवड़ियाँ कुछ मुँह में और कुछ जलती लोड़ी में जाते। सर्दियाँ खैर से गुज़र गईं इसकी खुशियाँ मनाते। देर तक आग तापते रहते। गाने-बजाने होते। एक लोड़ी पर पापा का गाया वो गाना कैसे भूल सकती हूँ:

लोड़ी वाली रात लोकी बालदे नि लोड़ियाँ,
साडी कादी लोड़ी अक्खाँ सजना ने मोड़ियाँ...

अब जब न हम बच्चे रहे, न वो दोस्त, न वो शहर रहा, न माँ-पिता, भाई-बहन आसपास! 13 जनवरी तो आती है पर साथ में वैसी लोड़ी नहीं लाती।

किशोर पँवार

जनवरी यानी आम में बौर आने का मौसम। इन पेड़ों पर कोयल कूकने का मौसम। चारों ओर बसन्त की छटा छा जाती है। बसन्त पंचमी का भी यही महीना है और मकर संक्रान्ति का भी। गुड़, तिल, पतंग और खिचड़ी का भी।

खेत सरसों के पीले फूलों से पीले पड़ जाते हैं। गेहूँ, चना भी फूलकर फलने की तैयारी में हैं। इस महीने ठण्डे देशों (अमरीका, कनाडा, फ्रांस...) में नज़ारा कुछ और ही होता है। वहाँ भारी बर्फबारी के चलते वनस्पतियाँ (चीड़, देवदार, क्रिसमस ट्री...) अतिशीतलन के खतरे से जूझती हैं। उनकी पत्तियों व टहनियों पर भारी मात्रा में बर्फ जमा हो जाती है। वनस्पतियों के कन्द और कलियाँ सुप्त अवस्था में चली जाती हैं। हमारे देश के जम्मू-कशमीर जैसे ठण्डे इलाकों में सेब, केसर (कन्द) के साथ भी कुछ-कुछ ऐसा ही होता है।

बेहद ठण्डे देशों की तुलना में भारत, अफ्रीका जैसे उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में नज़ारा कुछ और ही होता है। वहाँ आकाश से बर्फबारी हो रही होती है और यहाँ पेड़ों से पत्तीबारी। पत्तियाँ पककर, पीली पड़कर टूट-टूटकर हवा के साथ इधर-उधर उड़ने लगती हैं। पतझड़ अपने शबाब पर होता है। ढाक (पलाश) के मशहूर तीन पात नदारद होते हैं। पत्तियों की जगह कहीं-कहीं मरी-मरी सी शाखाओं पर गहरी काली-हरी घुण्डियाँ लगी हुई होती हैं, जो कुछ ही दिनों में फूटकर आग बरसाने की तैयारी में हैं। जंगलों में कुसुम के पेड़ों पर लाल, चमकीली, नई-नवेली, कोमल, नाजुक पत्तियों की छटा छाई होती है। पीपल और नीम पर भी नई ताम्बई पत्तियों ने जगह पा ली होती है। ठण्ड को अलविदा कहने का यह उनका तरीका है।

प्रवासी पक्षियों ने भी इन दिनों झील, झरनों और नदियों में अपने ढेरे डाल लिए हैं। पोचार्ड, लेवार्ड, टील, शावलर, ब्राह्मणी बत्तख, सुरखाब...

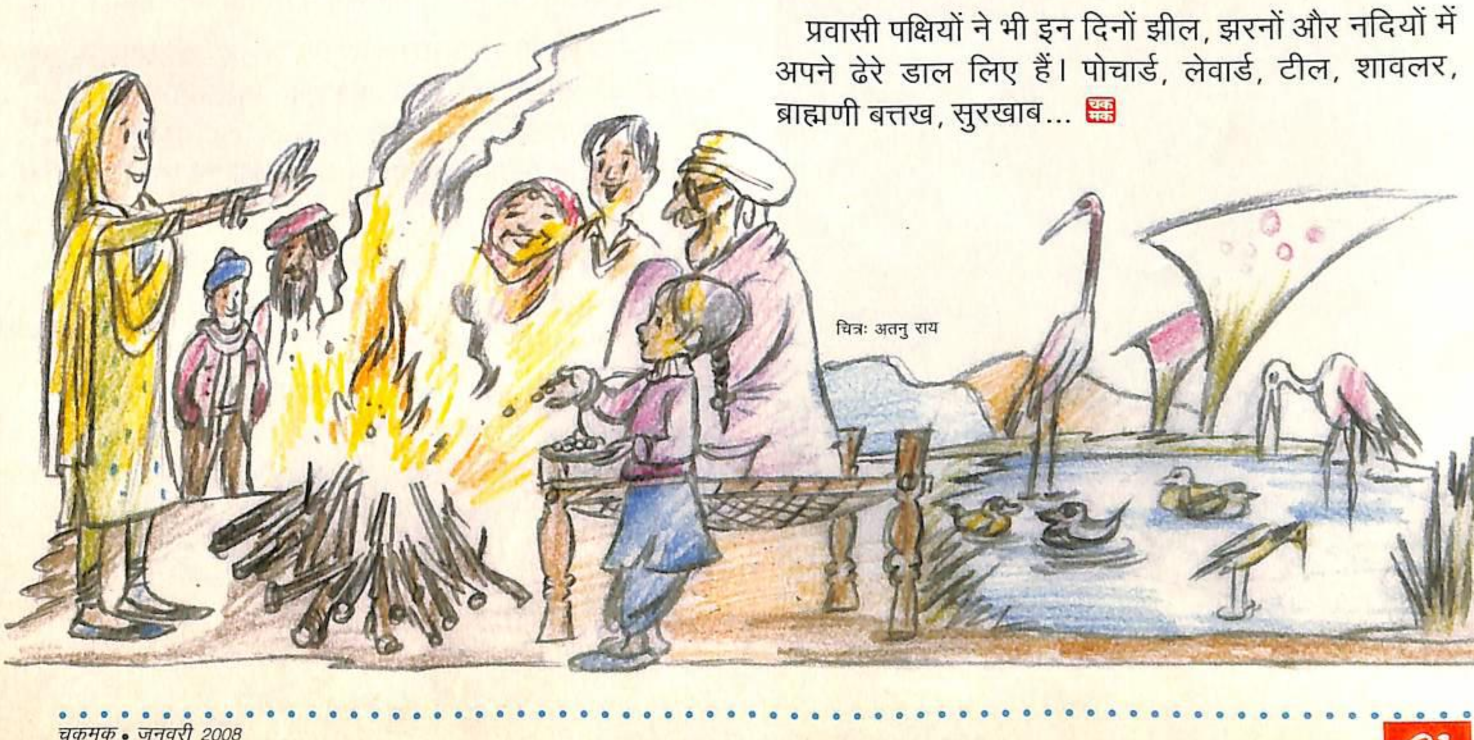

चित्रः अतनु राय

जनवरी की कुछ यादें

रश्मि पालीवाल

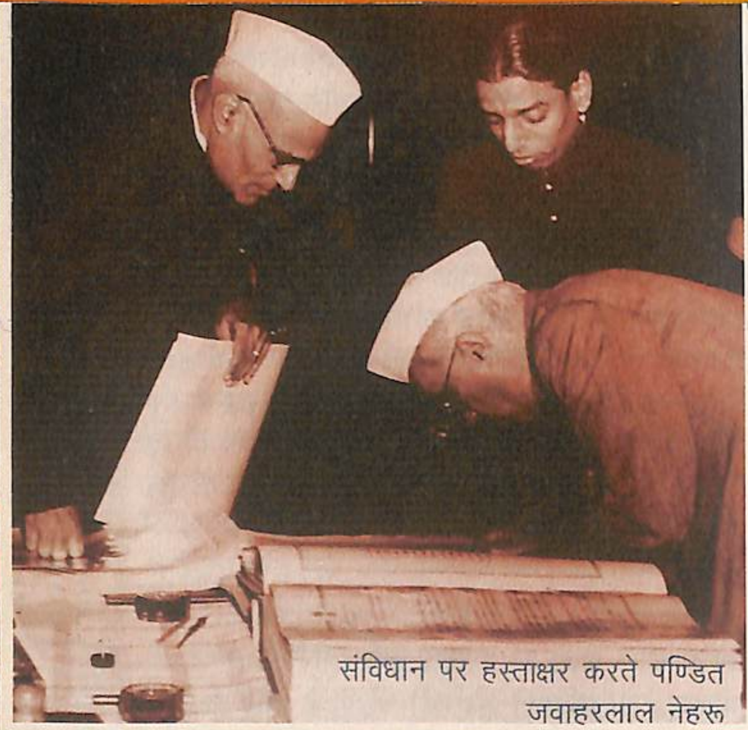

संविधान पर हस्ताक्षर करते पण्डित जवाहरलाल नेहरू

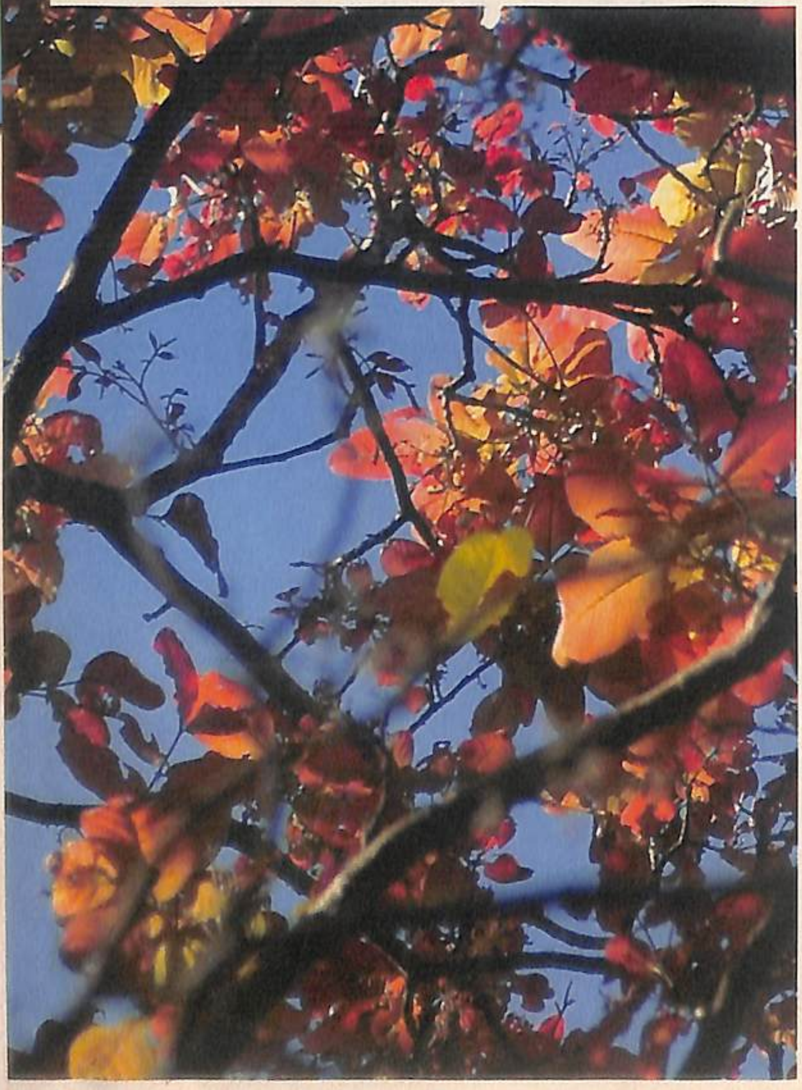

यह सर्द महीना क्या मायने रखता है मेरे लिए? इतिहास की कौन-सी घटनाओं की याद दिलाता है मुझे? मैं इस बारे में सोचती हूँ तो 30 जनवरी 1948 की तारीख से आगे या पीछे अपना ध्यान बढ़ा नहीं पाती हूँ। इस दिन दिल्ली हाउस के प्रांगण में प्रार्थना सभा की ओर बढ़ रहे थे गांधीजी। उन्हें नमस्कार करने की मुद्रा में झुके थे नाथूराम गौडसे, अपने हाथों में पिस्तौल छिपाए। सीधे सीने में दागी गई तीन गोलियों का वार झेलते हुए "हे राम" कहते-कहते गांधीजी ढेर हो गए। देश को आज़ाद हुए अभी साढ़े पाँच माह ही बीते थे और उस लक्ष्य के लिए अथक प्रयास करने वाली हस्ती को मिटा दिया गया। वह हस्ती जो गुहार कर रही थी कि इस देश में हिन्दू, सिख और मुसलमान सब प्रेम, शान्ति व अपनेपन के साथ जिएँ, वह हस्ती जो भारत-पाकिस्तान के विभाजन के दौरान पैदा हुई नफरत व हिंसा को रोकने व मिटाने के लिए पुकारती रही, मिटा दी गई।

अगले दो साल देश के लिए संविधान तैयार करने की उधेड़बुन में लगे। दो साल बाद इसी महीने की 26 तारीख को तैयार हुआ संविधान राष्ट्र को समर्पित हुआ व लागू हुआ। यही दिन क्यों चुना गया इसका भी एक कारण है। 26 जनवरी 1929 ही वह दिन था जब काँग्रेस ने ऐलान किया था कि वह देश के "पूर्ण स्वराज" के लिए संघर्ष छेड़ेगी व ब्रिटिश सरकार के साथ बातचीत व सहयोग का प्रयास बन्द कर देगी। इसी दिन लाहौर में जवाहरलाल नेहरू ने तिरंगा झण्डा फैराते हुए पूर्ण स्वराज का संकल्प पढ़ा था। लाहौर के अलावा देश के कई स्थानों पर सैकड़ों लोगों ने शान्तिपूर्ण जुलूस निकाले और पूर्ण स्वराज का संकल्प पढ़ा। तब से 26 जनवरी "पूर्ण स्वराज दिवस" के रूप में मनाया जाने लगा।

जब छोटी थी तो 15 अगस्त और 26 जनवरी की घटनाओं के फर्क को समझ नहीं पाती थी। एक स्वतंत्रता दिवस है और एक गणतंत्र दिवस। मन में सवाल रहता कि जब आज़ाद हुए तब गणतंत्र ही तो बने थे। किसी को हमने राजा थोड़ी-न बनाया था।

15 अगस्त 1947 और 26 जनवरी 1950 के बीच के समय में हम एक देश के रूप में क्या थे? क्या हैसियत थी हमारी सरकार की जिसके प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू थे और राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद? आगे की कक्षाओं में पता चला कि कोई राजनैतिक लड़ाई कितनी लम्बी, जटिल और धीमी होती है। और कितना दर्द व तनाव लिए होती है। इसी की याद दिलाता है मुझे जनवरी का महीना।

जनवरी का एक फूल - कुसुम
(फोटो: आमोद कारखानिस)

मधुरा

तुम भी बनाओ...

एक बार मैं अपनी मित्र के घर गई। वहाँ एक पूरी दीवार उसकी बेटी का कैनवास थी। वो गर्व से सबको अपने चित्र, अपनी कलाकारी दिखाती। यह सुविधा सभी के पास हो ज़रूरी नहीं। पर फिर भी कलाकारी तो की ही जा सकती है और कई तरह से। जैसे...

कागज़, वॉटर कलर और एक पेन लेकर बैठ जाओ।

1. अपनी उँगली को रंग में डुबाओ। और बनाते जाओ चिड़िया, बच्चे, मछली...। पेन हाथ-पाँव, आँखें, मुस्कान बनाने के काम आएगा।
2. यह मेरा पसन्दीदा खेल है। कागज़ (या किसी और चीज़ पर) एक बूँद रंग डालो और कागज़ घुमा कर फूँक से उसे फैलाओ।

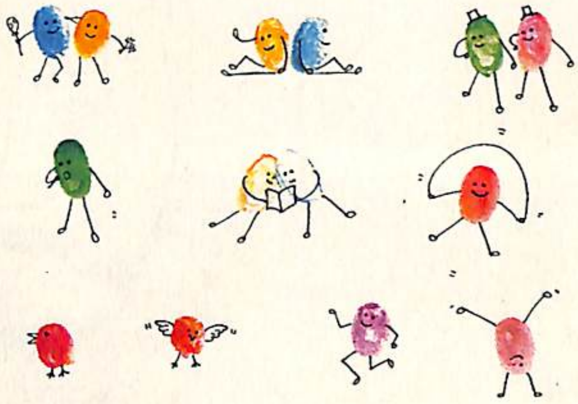

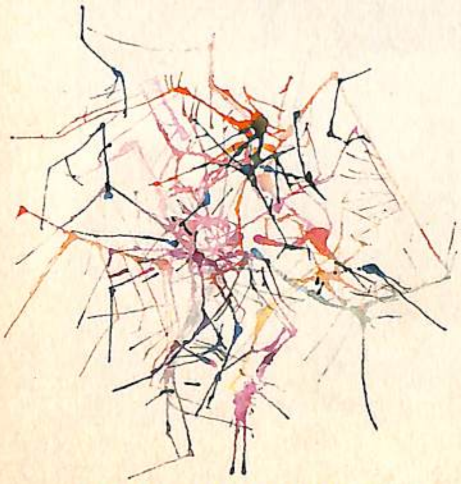

महेश बसेड़िया

ककोड़ा कला

एक दिन शाम को मैं भावसार जी की दुकान पर पान खाने गया था। दुकान पर मेरी नज़र अचानक एक सुन्दर-सी चिड़िया पर पड़ी – ककोड़े (एक जंगली सब्ज़ी) से बनी चिड़िया पर। भावसार जी ने इसे बड़ी तरकीब से बनाया था।
क्या तुमने कभी सब्ज़ियों से कोई कलाकृति बनाई है?

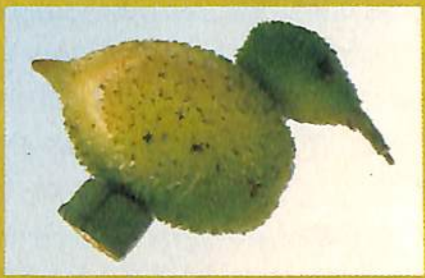

दिलीप चिंचालकर

कॉपी करो लेकिन ओरिजिनल की

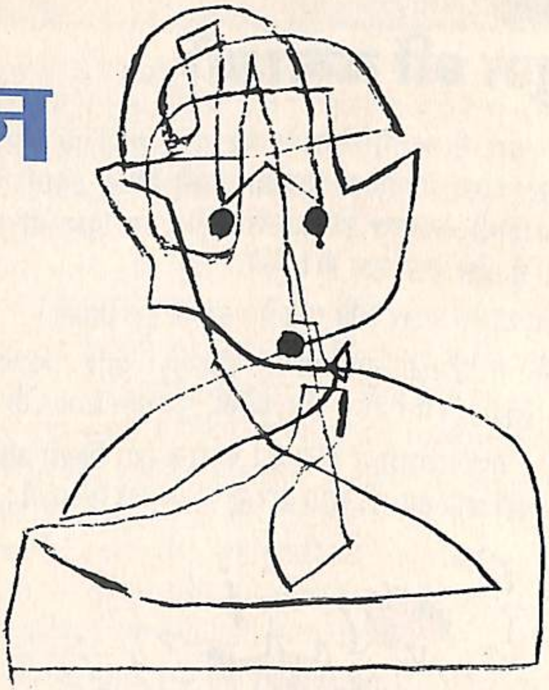

द फायर (1933) - मातिसी

बच्चे गोले में बैठकर एक खेल खेलते हैं। एक बच्चा दूसरे के कान में कुछ कहता है। वही बात दूसरा तीसरे के कान में दोहराता है। तीसरा चौथे के और चौथा पाँचवे के। इस तरह बात घूमते-घामते फिर पहले बच्चे तक लौट आती है। लेकिन यहाँ तक आते-आते वह कुछ की कुछ हो जाती है।

खेल में तो इस पर हँसी आती है, परन्तु ऐसा जब चित्रों के साथ होता है तब हँसी गायब हो जाती है। जिन बच्चों को जीव विज्ञान की पुस्तक देखकर चित्र बनाने पड़ते हैं वे इस बात को जानते हैं। पुस्तक की और असली फूल-पत्तियों में कई बार फर्क होता है। पहले फोटोग्राफर फूल की तस्वीर खींचता है फिर चित्रकार उसे देखकर चित्र बनाता है। कभी-कभी उस चित्र को देखकर एक तीसरा व्यक्ति चित्र बनाता है जो हमें किताबों में देखने को मिलता है। यानी चित्र फर्स्ट हैण्ड नहीं थर्ड-फोर्थ हैण्ड होता है। असली फूल को देखकर बना चित्र अच्छा तो दिखता ही है, उसकी बनावट भी बेहतर ढंग से समझ में आती है।

अच्छे कलाकार प्रकृति में देखी चीज़ों को दिमाग में रखकर उनका उपयोग अपनी कृतियों में करते हैं। एक अच्छा फैशन डिज़ाइनर आकाश के रंगों को या पत्तों के रंगों की छटा (कलर स्कीम) को अपने कपड़ों में उतारकर वाहवाही लूटता है। राइट बन्धुओं ने भी तो पंछियों के डैनों की वैज्ञानिक ढंग से नकल अपने हवाई जहाज़ के पंखों में की।

स्केच-बुक और पेंसिल से दोस्ती गाँठो। दीपिका पादुकोण या सोनम कपूर का फोटोग्राफ देखकर चित्र बनाने की बजाय अपने दोस्त को सामने बैठाकर उसका चित्र बनाओ। या फिर दादा-दादी, नाना-नानी को अपना मॉडल बनाओ। कप-प्लेट, गुलदान, कम्पास-किताबों के भी चित्र बना सकते हो। लोगों के चित्रों को पोरट्रेचर कहते हैं और निर्जीव वस्तुओं के चित्रांकन को स्टिल लाइफ।

शेन लीथवेट द्वारा बनाया मेरा चित्र

यहाँ दो चेहरे बने हुए हैं। एक मातिसी का बनाया और दूसरा शेन लीथवेट का। मातिसी एक प्रख्यात चित्रकार हैं और शेन लीथवेट ग्यारह साल का बच्चा। चलती बस में शेन ने मेरा यह दाढ़ीवाला चित्र बनाया था।

दूसरे दो चित्रों में बने कमरे काफी कुछ तुम्हारे बनाए जैसे हो सकते हैं – जमावट में भी और चित्र बनाने की शैली में भी। ये जाने-माने चित्रकार वान गॉग के बनाए हैं। मेज़ पर रखी शीशियों और मर्तबान का चित्र भी उन्हीं का है। आधी खुली

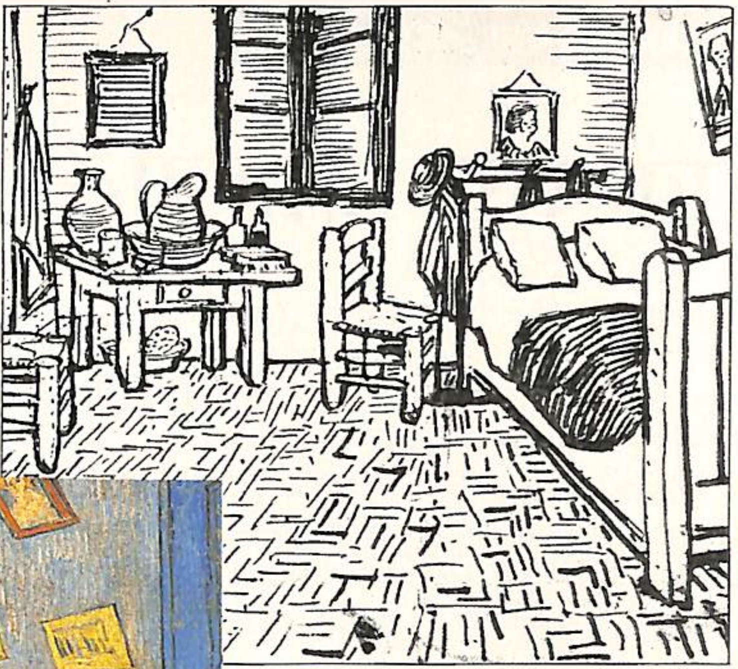

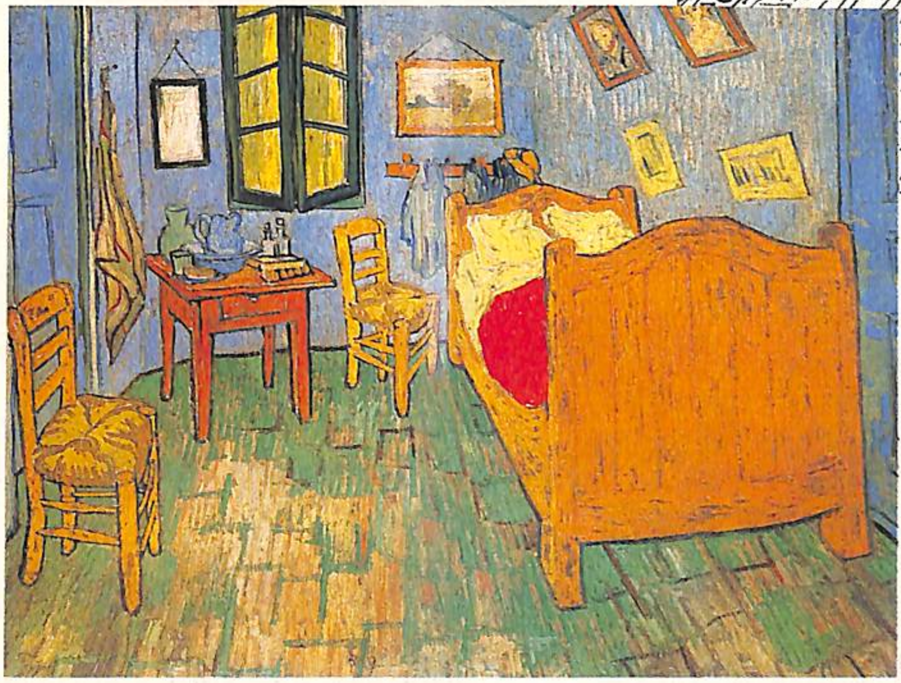

चित्रः मातिसी

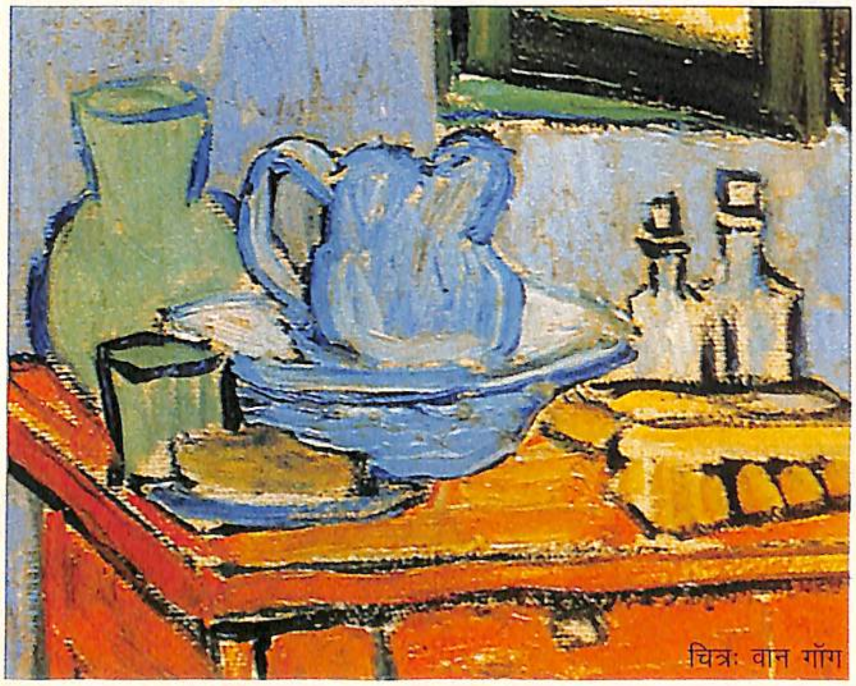

चित्रः वान गॉग

खिड़की वाला चित्र मातिसी का है। जीते-जागते मॉडल और असली चीज़ों के चित्र बनाकर तुम यह भी जान पाओगे कि होठों के आकार कैसे होते हैं? नाक और कान चेहरे पर कितने ऊपर-नीचे हैं या फिर आँखों और भौहों में क्या सम्बन्ध होता है? वस्तुएँ आगे-पीछे रखने पर कितनी छोटी-बड़ी दिखती हैं?

क्या यह मुश्किल है? कोशिश करो तो क्या ऐसे चित्र तुम नहीं बना सकते? बना सकते हो! किसी ने कहा है कि मन से चाहो तो सारी कायनात उसे पूरा करने में जुट जाती है।

एक घड़ा और गुत्थी सौ

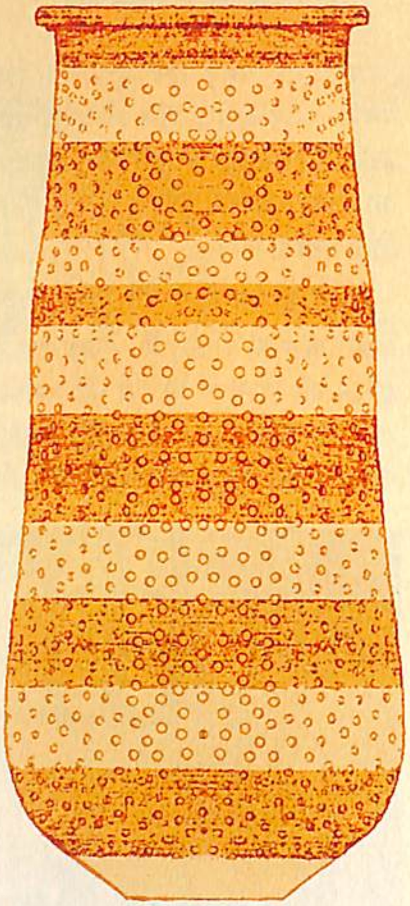

चित्र 1

मिट्टी से बना यह ऊँचा घड़ा (चित्र 1) लगभग 4000 साल पुराना है। जैसा कि तुम देख रहे हो, पूरे घड़े में छेद या सुराख बने हुए हैं। यह सिन्धु घाटी के किसी शहर के खण्डहर से मिला है। ऐसे कई घड़े मिले हैं। इन घड़ों का उपयोग किस काम के लिए किया जाता होगा?

उस समय की कोई पुस्तक तो बची नहीं है जिसे पढ़कर हम बता सकें कि इन सुराखदार बर्तनों का उपयोग क्या रहा होगा। इस मामले में इतिहासकारों ने ज़रूर कुछ अटकलें लगाई हैं – कोई कहता कि इससे वे लोग मछली पकड़ते होंगे। यानी नदी-नालों में मछली पकड़ने के लिए यह जाल की तरह काम में लाया जाता होगा।

कोई और कहता, नहीं नहीं, इससे वे अपने देवताओं को धूप देते होंगे।

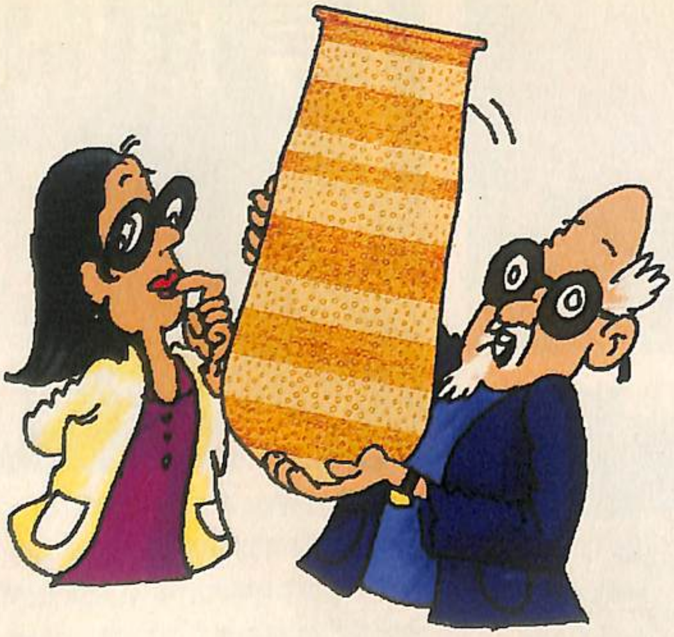

कुछ और लोगों ने कहा, अगर ये ज़्यादा संख्या में नदी-नालों के किनारे मिले हैं तो मछली पकड़ने के काम आते होंगे, और अगर पूजा स्थल या मन्दिरों में मिले हैं तो धूप देने के काम आते होंगे। अब समस्या यह है कि सिन्धु घाटी के खण्डहरों में कोई खास पूजा स्थल या मन्दिर जैसे भवन या कमरे नहीं मिले हैं। और छेद वाले घड़े केवल नदी किनारे ही नहीं बल्कि सभी जगहों पर मिले हैं।

तुम्हें क्या लगता है, इस तरह के बर्तनों के क्या-क्या उपयोग किए जाते होंगे?

चित्रः अतनु राय

एक घड़ा मोती से भरा

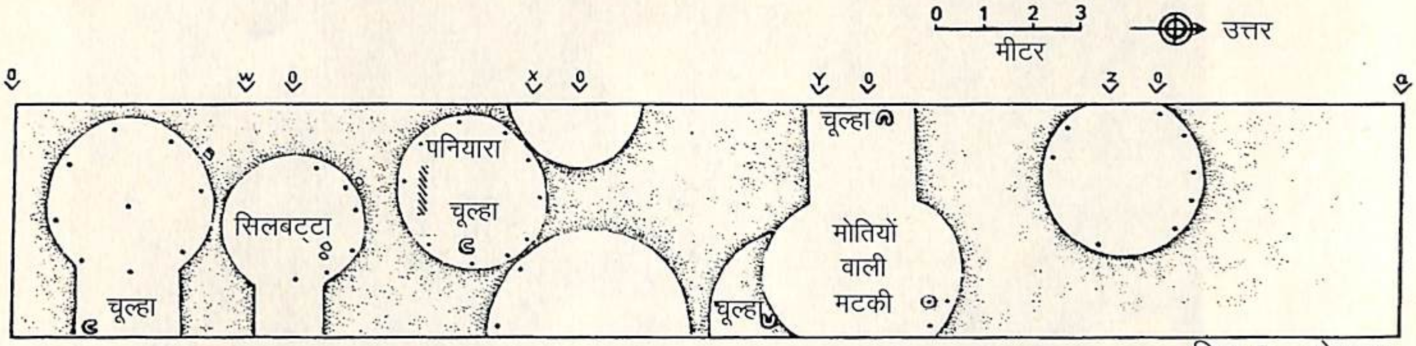

चित्र 2 - ज़ेकड़ा

ये अवशेष सिन्धु घाटी के प्रसिद्ध शहरों से दूर, बहुत दूर, गुजरात में कच्छ के एक छोटे-से गाँव ज़ेकड़ा के हैं (चित्र 2)। यह गाँव सिन्धु घाटी सभ्यता के ही समय का है। इस गाँव में छोटी-छोटी गोल झोपड़ियाँ मिली हैं। घर घास-फूस के बने थे। इनमें शायद गरीब किसान या चरवाहे रहते होंगे। लेकिन दो झोपड़ियाँ कुछ खास थीं। उनमें रहने वालों ने झोपड़ी के फर्श के नीचे एक-एक मटकी गाड़ रखी थी। उसमें क्या था?

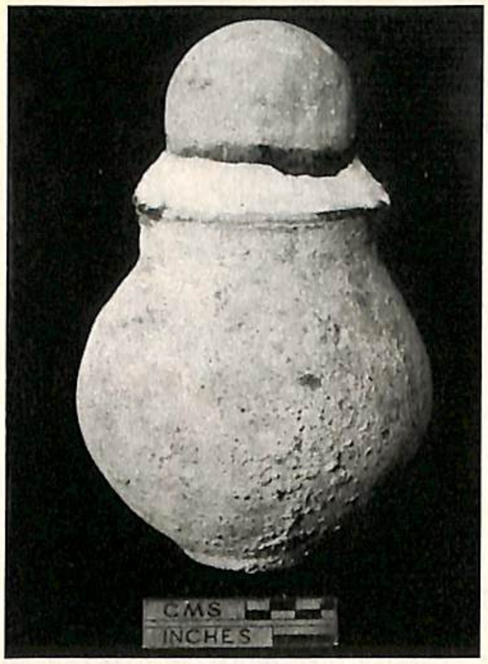

चित्र 3 - इसके अन्दर क्या होगा?

इतिहासकारों ने जब इस मटकी के ढक्कन को बड़े एहतियात से खोलकर देखा तो अन्दर एक छोटी-सी मटकी और मिली! (चित्र 4)

चित्र 4 - बीच में रखी छोटी मटकी बड़ी मटकी के अन्दर थी। बड़ी मटकी को मिट्टी के लौंदे से ढँका हुआ था।

उसके अन्दर...?

इन मटकियों के अन्दर ऐसा क्या खज़ाना था? हीरे? सोने के सिक्के?

बारीक राख! और उस राख में दबे थे हज़ारों बारीक मोती। इनमें तार पिरोकर मालाएँ बनाई जा सकती थीं। मोती स्टीयेटाईट नामक पत्थर से बने थे।

चित्र 5 - स्टीयेटाईट मोती। इस चित्र में इन्हें 15 गुना बढ़ाकर दिखाया गया है। यानी ये बारीक सेव (सिवैंयों) के साइज़ के थे। जैसे सेव के छोटे-छोटे टुकड़े हों। बस एक मिली मीटर मोटे और दो या ढाई मिली मीटर लम्बे! इतने बारीक कि इस छोटी-सी मटकी के अन्दर लगभग सत्रह हज़ार मोती निकले!

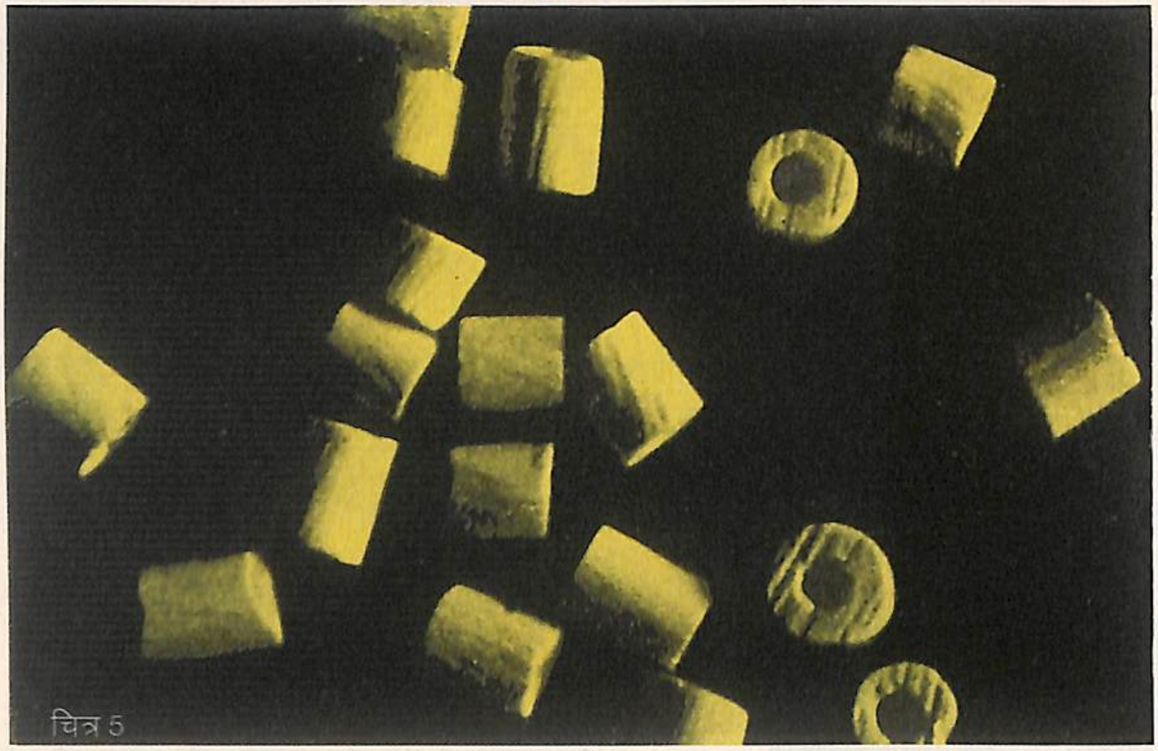

चित्र 5

स्टीयेटाईट एक मुलायम पत्थर है। इसे बारीक पीसकर लुगदी बनाई जाती थी। फिर लुगदी से लम्बी, पतली सिवैयाँ बनाई जाती थीं। इन सिवैयों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर भट्‌टी में पकाकर कड़क किया जाता था। लेकिन इतनी पतली चीज़ में छेद कैसे किए होंगे? यह आज भी एक पहेली बनी हुई है।

सवाल है कि गुजरात के इन झोपड़ीवालों ने इन मनकों को क्यों इतना सम्हालकर ज़मीन के नीचे गाड़कर रखा होगा? ये मोती उनके लिए इतने कीमती क्यों थे? सिन्धु घाटी के शहरों में बने ये मोती उन्हें कैसे मिले होंगे?

ज़रा सोचकर हमें लिखो। मज़ेदार पत्रों को हम *चकमक* में छापेंगे और पुरस्कार भी मिलेगा!

पेड़ों में फूले पंछी

पक्षी जैसे दिखते इन फूलों का नाम है: *रीनाकैंथस नॅस्टस*। मध्यप्रदेश के कुछ हिस्सों में इसे पलक जुही कहा जाता है। तुम्हारे इलाके में इसे किस नाम से जाना जाता है?
इन्हें देखकर किस पक्षी की याद आती है? क्या तुम किसी ऐसे पक्षी को जानते हो जो फूल-सा लगता हो?

दिसम्बर अंक की चित्र पहेली के हल

दि	सं	ब	र		प	तं	ग
	त		स्सी			बू	ट
ता	रा		कू		छा		क
ला		क	द	म	ता	ल	
चा	र		ना	ल		ता	श
बी	न			ह			
		छु	प	म	छु	पा	ई
ब	क	री			ट्टी		ख़

चित्र पहेली

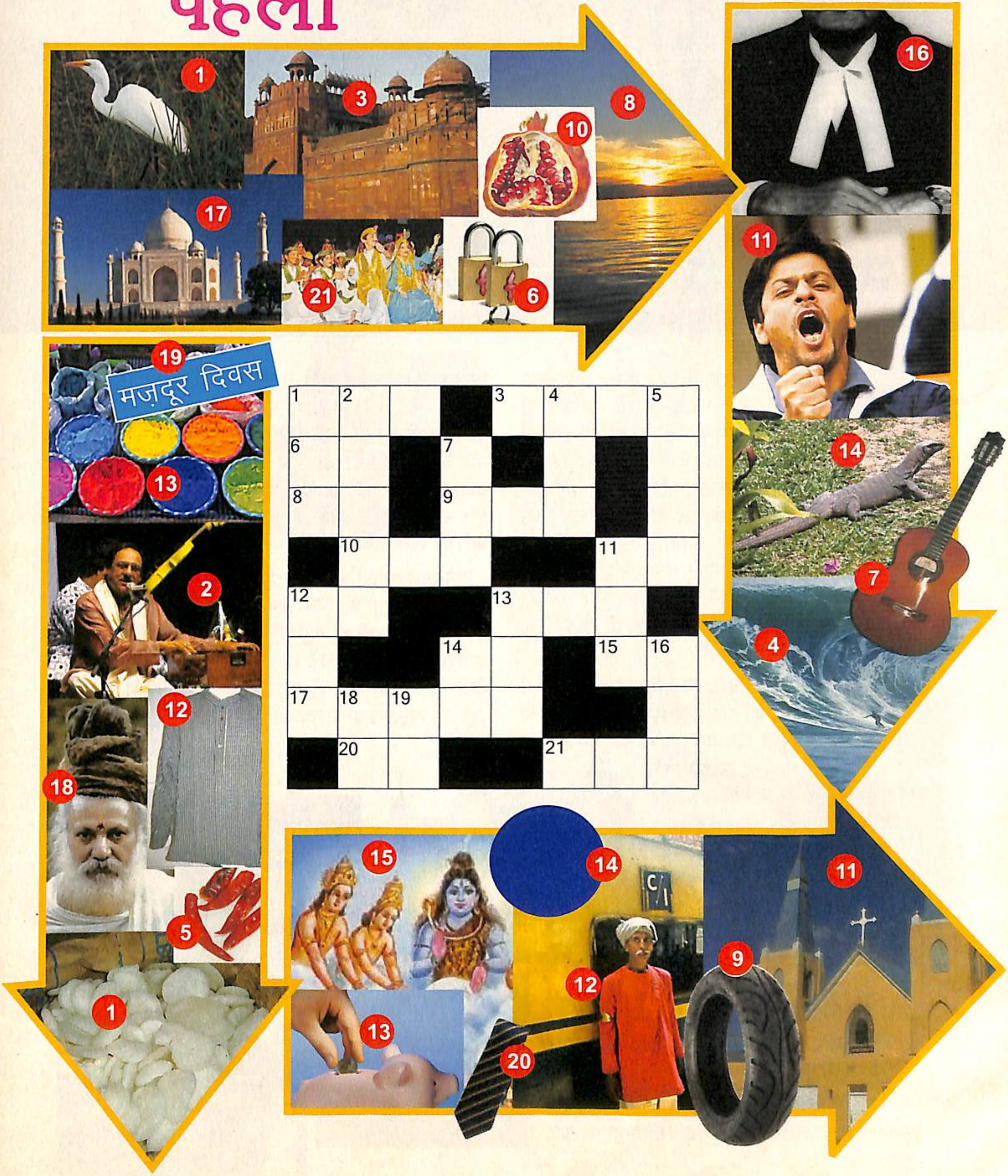

हम किसी से कम नहीं

वो ऊँची इमारतों, पहाड़ों से कूद जाती हैं। उनकी कूद से काँच किरचें-किरचें हो बिखर जाता है। भयानक आग में कभी अकेले, कभी गाड़ी समेत कूद पड़ती हैं। घोड़े हों या मोटर साइकल, ऐसे दौड़ाती हैं कि बस साँसें ही रुक जाएँ। हम दम साधे देखते हैं। हाथ-पाँव भींचे। दिल उनकी खैर मनाने लगता है। और फिर "उनका" चेहरा दिखता है। शुक्र है सब ठीक-ठाक है।

यह ठीक-ठाक बचा चेहरा और अभी-अभी करतब दिखा गया शख्स एक नहीं है। अपनी जान जोखिम में डाल खौफनाक करतब करने वाली स्टंट-महिलाएँ दरअसल हीरोइनों की डुप्लीकेट होती हैं।

स्टंट या खतरनाक दृश्य करना कोई नया काम नहीं है। 1930-40 के ज़माने में *हंटरवाली* और *तूफान मेल* जैसी फिल्मों में नाडिया के ज़बरदस्त तेवर देख लोग अचम्भित रह जाते थे। वे करतब या तो नाडिया खुद कर रही होती थीं या कैमरे का कमाल था। अब हमारे पास उस ज़माने से कहीं ज़्यादा एड्वांस कैमरे, कम्प्यूटर, टेक्नॉलॉजी है। फिल्मवाले उनसे जो चाहें दिखा सकते हैं। लेकिन मुश्किल सीन को ज़्यादा वास्तविक, ज़्यादा प्रभावी दिखाने के लिए फिल्म व विज्ञापनों के डायरेक्टर इंसानों से ही वो करामातें करवाते हैं।

26 साल की स्टंट महिला नेहा टण्डन कहती हैं कि जब मैं हर सुबह अपने दो बच्चों को घर पर छोड़ शूटिंग के लिए निकलती हूँ तो खुद अपनी खैर मनाती जाती हूँ। 19 साल की सलमा के पिता फिल्मों में स्टंटमैन थे – अलिम "सैण्डो" शेख। सलमा ने दसवीं पास करने के बाद पढ़ने से इंकार कर दिया। वो पुलिस या आर्मी में जाना चाहती थी। कुछ लीक से हटकर करना चाहती थी। "पिताजी ने मुझे मेरे भाइयों की तरह ही वो सब करने दिया जो मैं करना चाहती थी।" सलमा बिपाशा बसु, दीपिका पादुकोंण, प्रियंका चोपड़ा आदि की डुप्लीकेट बन चुकी हैं। सलमा और सनोबर (भविष्यवक्ता बेजान दारूवाला की बेटी) 14 -15 साल की उम्र से यह काम कर रही हैं।

शोले में बसन्ती (हेमा मालिनी) बनी रेशमा कहती हैं कि इतने खतरनाक काम के लिए मेहनताना बेहद कम मिलता है। हमारे ज़माने में तो कोई बीमा या सुरक्षा नहीं मिलती थी। अब इसका इन्तज़ाम हुआ है। इसकी खासी ज़रूरत भी है। हीरो-हीरोइन तो एक उम्र हो जाने के बाद बाप-माँ-भाभी-दादा बन काम जारी रखते हैं। अमिताभ बच्चन, हेमा मालिनी, जया भादुड़ी को देखो। पर हम जो एक बार करतब दिखाने के काबिल न बचे तो हमारा फिल्मी कैरियर खत्म।

"मेहनत हमारी और नाम किसी और का सोचकर कभी-कभी बुरा लगता है। फिर साथी कलाकारों से मिली तारीफ, इज़्ज़त देख खुशी भी बहुत मिलती है। वो उनका काम, यह हमारा काम।" "खतरे तो हर जगह हैं, पता नहीं कहाँ, कैसे-कैसे खतरे। उनसे डर लगता है। पर ये तो सामने हैं खुल्लम खुल्ला। इनसे क्या डर...।" चकमक

सनोबर

रेशमा

इस पन्ने में "ख" से शुरू होने वाली कितनी चीज़ें हैं?

मैंने ढूँढीं...

"ख" से शुरू होने वाली कौन-कौन-सी चीज़ें हमसे छूट गईं? उनके चित्र बनाओ।

मेरा पन्ना

एक राक्षस था और एक घोड़ा था। राक्षस ने घोड़े को रोक लिया। फिर वो हंटर से घोड़े को मारने लगा। घोड़ा बोला मुझे क्यों मार रहे हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मुझे मेरे मालिक के पास जाने दो। मेरा रास्ता क्यों रोक रहे हो? इतने में सूरज निकल आया। वह राक्षस से बोला, इसे क्यों मार रहे हो?

बबलेश, होशंगाबाद, म.प्र.

करण कारकले, छठवीं

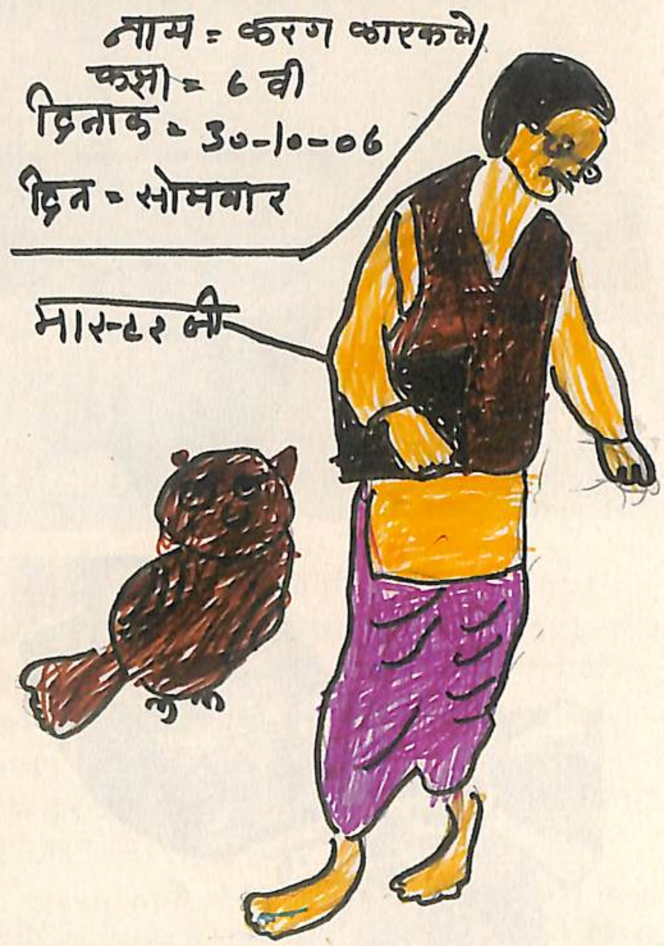

मौसम

पल-पल में बदलते मौसम
कभी छाँव में कभी धूप में ढलते मौसम
कभी बूंदों को संग लेकर, तो
कभी बसंत को लाते मौसम
कभी ओस की बूंदें लेकर, तो
कभी ओले बरसाते मौसम
कभी ठंडी-ठंडी हवाओं के साथ
कभी सरसराते पलों में
कभी खुशबूओं के संग
झूम-झूम कर गाते मौसम
एक पल में अंधेरा एक पल में उजाला
अजीब-सा है मौसम का ये रूप निराला

रीता सिंह, देवास, म.प्र.

तोता और पेड़

यह पुरानी कविता है:

मिट्ठू-मिट्ठू तोता
डाली ऊपर सोता

पर अब लिखा जा सकता है:

मिट्ठू-मिट्ठू तोता,
पेड़ कटते देख रोता।
डाली-डाली, ढूँढता रहता,
कहाँ अब वो सोता?

यह सही है कि पेड़ अब धड़ाधड़ कटने लगे हैं। पशु-पक्षियों को रहने के लिए जगह नहीं मिल पाती है। सूखे पेड़ों को छोड़कर लोग हरे-भरे पेड़ों को काटकर कई परिवारों को बेघर कर रहे हैं। लोगों को यह नहीं भूलना चाहिए कि हरे-भरे पेड़ जीवित हैं और कईयों को जीवन देते हैं। जबकि मनुष्य इसके विपरीत कर रहा है। उसे शायद यह नहीं पता कि वह पेड़ों को मारकर अपने आप को मार रहा है। जितने पेड़ कटेंगे उतनी ही ऑक्सीजन कम होगी और इससे हमारा अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। हमें पेड़ों को काटने की बजाय अधिकाधिक पेड़ लगाने चाहिए ताकि ये डरे-सहमे तोते स्वतंत्रता से जीवन बिताएँ। जैसा कि कहा गया है: "जियो और जीने दो।"

अशिता सक्सेना, सातवीं, गुना (म.प्र.)

जसलीन कौर, पाँचवीं, दुर्ग (म.प्र.)

रितिका गौर, पाँच वर्ष, भोपाल (म.प्र.)

आयुष शर्मा, पाँचवीं, उज्जैन (म.प्र.)

रिशी देसाई, पहली, उज्जैन (म.प्र.)

संदीप कुमार पटेल, छठवीं, भोपाल (म.प्र.)

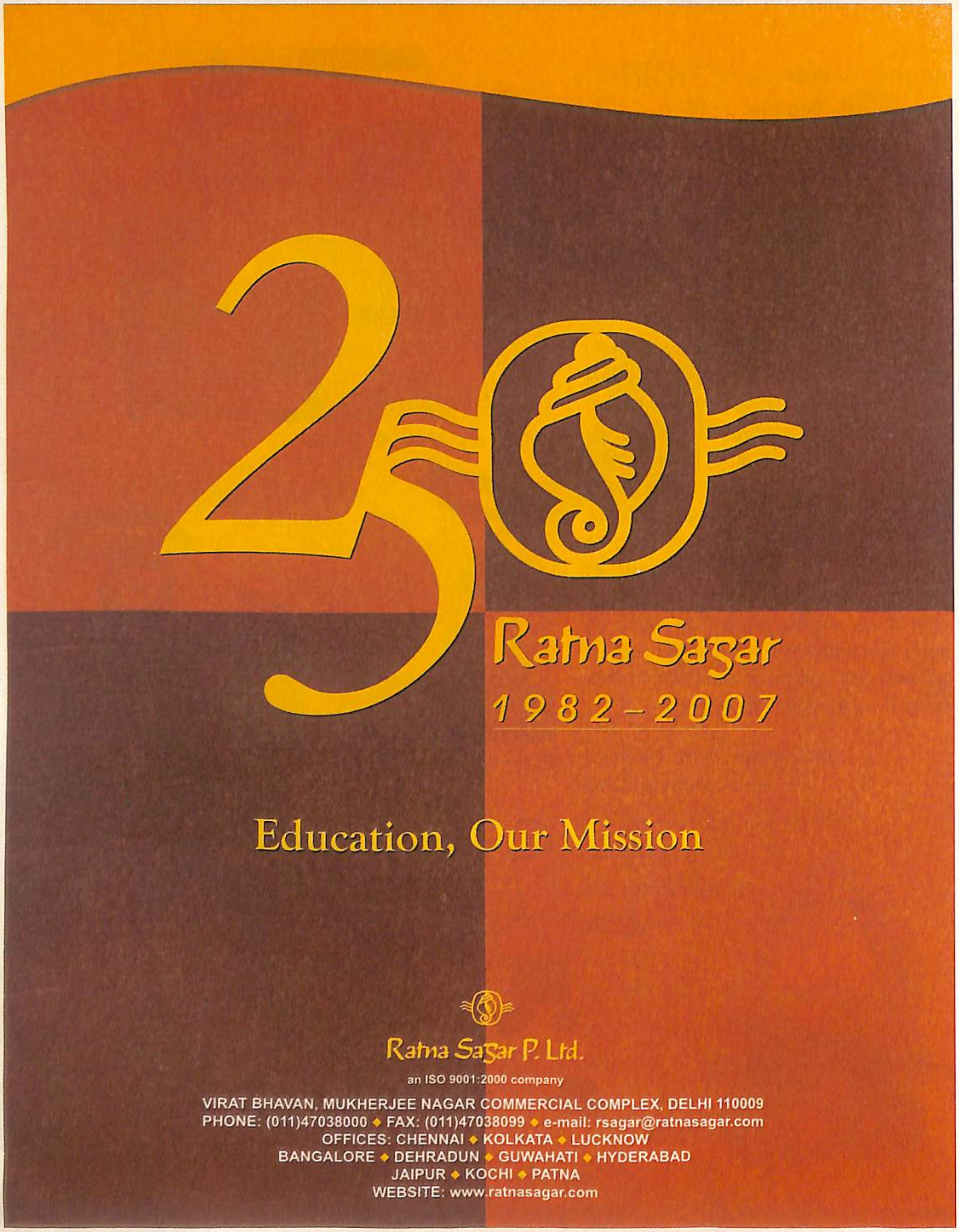
25
Ratna Sagar
1982–2007
Education, Our Mission
Ratna Sagar P. Ltd.
an ISO 9001:2000 company
VIRAT BHAVAN, MUKHERJEE NAGAR COMMERCIAL COMPLEX, DELHI 110009
PHONE: (011)47038000 ◆ FAX: (011)47038099 ◆ e-mail: rsagar@ratnasagar.com
OFFICES: CHENNAI ◆ KOLKATA ◆ LUCKNOW
BANGALORE ◆ DEHRADUN ◆ GUWAHATI ◆ HYDERABAD
JAIPUR ◆ KOCHI ◆ PATNA
WEBSITE: www.ratnasagar.com

विनोद कुमार शुक्ल

हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़! (2)

एक घर के सामने गाय बाँधने के लिए खूँटा गड़ा था। उस पर पतरंगी चिड़िया बैठी थी। उसकी लम्बी पूँछ अन्त में लकीर की तरह पतली थी। भैरा ने उसकी तरफ इशारा कर पूछा, "खंजन है?"

"नहीं। पतरंगी है।" बोलू ने कहा।

"क्या तुम खंजन चिड़िया को पहचानते हो?" भैरा ने पूछा। "हाँ।" बोलू ने कहा।

भैरा कुछ दौड़ता हुआ बोलू के पास गया। और कहा, "मैंने एक जादू सीखा है। अगर खंजन चिड़िया का पंख सिर पर रख लो तो गायब हो जाओगे।"

"फिर आएँगे कैसे?"

"सिर से पंख उतार लो तो आ जाएँगे," भैरा ने कहा।

"गायब होकर क्या कहीं चले जाते हैं?" बोलू ने पूछा।

"वहीं रहते हैं। जहाँ जाना चाहें जा सकते हैं। पर किसी को दिखते नहीं।"

"परन्तु मैं गायब होकर कहीं नहीं जा सकूँगा। चुपचाप गायब होकर वहीं खड़ा रहूँगा। जाने के लिए मुझे बोलना पड़ेगा और सब लोग जान जाएँगे कि बोलू बोल रहा है," बोलू ने कहा।

"पर तुम दिखोगे नहीं। गायब रहोगे," भैरा ने कहा।

"तुम गायब होकर चुपचाप जा सकते हो। गायब होकर क्या मैं तालाब में नहा सकता हूँ?"

"यह मुझको नहीं मालूम। नहाने में सिर पर रखा पंख गिर जाएगा तो दिखने लगेंगे," भैरा ने कहा।

"गायब होने पर क्या मुझको साँप काट सकता है?" बोलू ने पूछा

"मालूम नहीं। गायब होने के बाद जानेंगे।"

"गायब होने पर साँप भी नहीं देख सकेगा," बोलू ने कहा।

"तुम खंजन चिड़िया को मुझे पहिचनवा दो। मैं तुमका भजिया खिलाऊँगा।"

"पैसे लोगे?" बोलू ने कहा।

सिर से टोपी उतारकर भैरा पसीना पोंछने लगा। "अभी मुझे बहुत बात करनी है। मैं थकूँगा नहीं," भैरा ने रुककर फिर कहा, "भजिया के पैसे नहीं लूँगा।"

"पंख लेने के लिए तुम खंजन को मार डालोगे?" बोलू ने पूछा।

"नहीं मारूँगा। एक बिच्छू भी चाहिए।"

"पत्थर के नीचे ढूँढना पड़ेगा। बिच्छू का क्या करोगे?" बोलू ने पूछा।

"डंक निकालूँगा।"

"डंक का क्या करोगे?"

"नहीं बताऊँगा," भैरा ने कहा।

"तो मैं खंजन चिड़िया भी नहीं बताऊँगा," बोलू ने कहा।

बजरंग होटल थोड़ी दूर थी। "रुको। यहीं कुछ देर बात करते हैं," भैरा ने कहा।

परन्तु बजरंग महराज ने जान लिया था। भैरा की गन्ध आ गई हो।

"कहाँ गायब हो गया था?" ज़ोर की आवाज़ आई। अभी इसके बाद जंगल से शेर के दहाड़ने की आवाज़ आने लगी। भैरा हड़बड़ा गया। शायद डर भी गया था। भैरा ने जाते-जाते बोलू से कहा, "एड्ड दिन मैं सचमुच गायब हो जाऊँगा।" शायद यह जवाब बजरंग महराज के लिए भी था।

बजरंग होटल के सामने भट्टी थी, टीन से ढँकी हुई। फिर एक बड़ा बरामदा था। बरामदे में लकड़ी की बेंच और आड़ी-टेढ़ी टेबिलें रखी थीं। सभी टेबिलें ऐसी थीं कि अपने पाए पर बस टिकी हैं। हिलती-डुलती थीं। एक कप चाय टेबिल पर रखते तो टेबिल इस तरह धीरे-धीरे हिलती थी जैसे धीरे-धीरे फूँकने से चाय हिलती है। टेबिल के स्थिर होते ही चाय पीने लायक ठण्डी हो जाती थी। टेबिल पर यदि भजिया की प्लेट अभी स्थिर रखी है तो एक भजिया उठाने के बाद प्लेट कुछ सरक जाती और बिना देखे अन्दाज़ से दुबारा भजिया उठाते तो अन्दाज़ गलत हो जाता। यही हाल बेंच का था। बैठे-बैठे एक पैर के ऊपर दूसरा पैर रखते तो बेंच

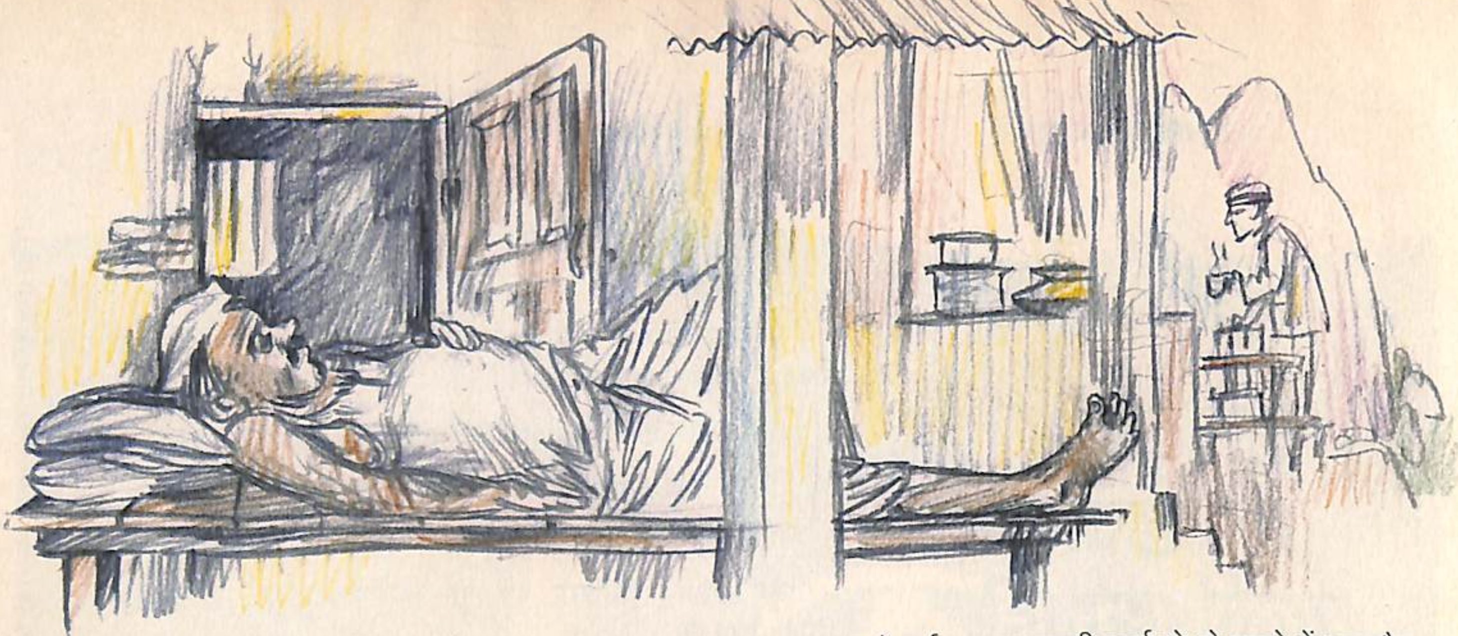

हिलकर ऐसी हो जाती थी कि सामने की अपनी प्लेट की जगह पड़ोस की प्लेट आ जाती थी। टेबिल पर पानी का गिलास नहीं रखा जाता था। गिलास रखते ही लुढ़क जाता था। पानी से भरे गिलास बरामदे पर चढ़ने-उतरने के लिए रखे पत्थर के पास रखे जाते। ग्राहक बरामदे में चढ़ते ही पहले पानी पीकर गिलास वहीं रख देते। बरामदे से उतरते समय भी यही होता। बजरंग महराज ग्राहकों की हरकतों पर कड़ी नज़र रखते।

बरामदे के बाद एक कमरा दिखता था। बरामदे का उजाला कमरे के दरवाज़े से अन्दर उतना ही जाता था कि इतना ही बचा है। कमरे के अन्दर प्रायः अँधेरा ही रहता जिसमें थोड़ा-सा उजाला कभी मिला दिया जाता हो। अगर बदली छा जाती तो बरामदे का भी बहुत कुछ अँधेरा कमरे के अन्दर चला जाता कि बरामदे में कुछ उजाला रहे। शाम को कमरे के अन्दर एक फीका बल्ब जलता था। यह देखने के लिए जलाया जाता कि अँधेरा कितना है। बरामदे में ट्यूब लाइट जब तक जलती कमरे का बल्ब नहीं जलाया जाता। कभी ट्यूब लाइट रात भर जलती जो तब चारों तरफ के घनघोर अँधेरे में कई दिनों के भटके हुए लोगों को सहारे की दिख गई दिशा की तरह होती। घनघोर जंगल के बीच यहाँ जो कुछ भी है भटककर आई हुई जैसी है। बिजली भी भटककर आई हुई जैसी। लौट जाने के लिए जब तब जाती हुई।

होटल का पिछवाड़ा दक्षिण की तरफ था। सूर्योदय होने के बाद थोड़े समय के लिए अन्दर के कमरे में भट्टी के सुलगते फैले धुएँ के बीच प्रकाश की एक किरण लकीर जैसी कुछ देर के लिए ठहरी हुई दिखाई देती। यह लकीर एक इशारे की तरह होती। इस लकीर का अन्त नहीं दिखता था। कम से कम बाहर से नहीं दिखता था। यह प्रकाश के अरगनी की तरह था। अँधेरे को झकाझक धोकर टाँगने की अरगनी।

सुबह हो गई। अगर बदली छाई हो तो कमरे में रात जैसा अँधेरा होता।

कमरे के दरवाज़े के पास एक तखत पर बजरंग महराज मोटे तकिए के सहारे रहते। धोती बण्डी पहनते थे। अधलेटे में सिर उतना ही उठा होता जिसमें टोपी पहनी जैसी रह सके। तखत में कुछ बिछा नहीं होता था। तकिए में प्रायः गिलाफ नहीं रहता था। तकिए को नाखून से खरोंचा जाए तो मैल निकलने का निशान दिखाई देता। बजरंग महराज की धोती, टोपी और भारी मोटा तकिया चिक्कट मैले थे। उजाले में अँधेरे की मैल की परत पड़ी थी। ऐसा चिक्कट अँधेरा कि भट्टी के धुएँ की कालिख से बनता हो। बजरंग महराज जहाँ लेटते थे वह बाहर से अन्दर का तिलस्म लगता था। कमरा गुफा जैसा लगता था। लगता कि एक गुफा को कमरे की तरह शामिल कर सामने एक बरामदा बना दिया गया हो। कमरे की लम्बाई-चौड़ाई का अनुमान नहीं होता था। अँधेरा जहाँ सबसे अधिक था वहाँ शायद दीवाल हो। पर दीवाल दिखाई नहीं देती थी। शायद एक लम्बा गहरा बोगदा हो।

होटल का पिछवाड़ा एक बौने पहाड़ से सटा हुआ बना था। पीछे की तरफ बड़ी-बड़ी चट्टानें थीं। दूर-दूर तक चट्टानें बिखरी पड़ी थीं। पहले यह पहाड़ बौना न रहा हो। पहाड़ से चट्टानें अलग होकर बिखर गई हों। बची हुई चट्टानों के ढेर में यह बचा पहाड़ था। इस पहाड़ में एक जगह चट्टानों के बीच एक गहरी जगह थी। उसमें चरवाहे पत्थर डालते थे। पत्थर के नीचे गिरने की आवाज़ को सुनते। पत्थर के नीचे पहुँचने की आवाज़ कुछ समय बाद या उसी दिन नहीं सुनाई देती थी। सात दिन बाद सुनाई देती थी। इतना गहरा था। चारों तरफ के सन्नाटे में ध्यान से कान सटाकर सुनो तो लगता सिक्कों के ढेर पर पत्थर की आवाज़ तभी आती थी जब पत्थर डालने वाला कम से कम सात दिन बाद पहुँचता था। सात दिन बाद किसी भी

समय जब वह कान लगाकर सुनता तो खन्न से आवाज़ आती। सात दिन के पहले पहुँच जाए तो उसे पत्थर के नीचे गिरने की आवाज़ सुनाई नहीं देगी। पत्थर डालने के चाहे महीने भर बाद, साल भर बाद या कई सालों बाद बूढ़ा होकर पत्थर डालने वाला पहुँचता और फिर सुनता तब पत्थर गिरने की आवाज़ आती। जितने दिन बाद पत्थर फेंकने वाला आता उसे उतने ही दिन की गहराई में सिक्के पर पत्थर गिरने की आवाज़। आती सात दिन की गहराई सबसे समीप की गहराई थी। पहाड़ ऊँचा नहीं था पर अपने में बहुत गहरा था। गहराई में अन्दर कूदने के लिए एक आदमी जितनी जगह थी। परन्तु कोई कभी नहीं कूदा। गहराई के मुख से किसी को बाहर आते हुए नहीं देखा गया। वहाँ बैठ जाओ तो एक चींटी भी ऊपर आते नहीं दिखती। हो सकता है वहाँ से कोई ऊपर न आ पाता हो।

होटल के ठीक बाद जो घर बसा होगा वह किसी को नहीं मालूम। उस घर के लोगों को भी नहीं। कौन कब आया यह सभी शायद भूल चुके हों। किसी से पूछा तो कहता – वह घर बसा है। उससे पूछते तो वह कहता – नहीं। मेरे पहले से एक झोपड़ी थी जिसकी छप्पर हरी घास से बनी है। हरी घास की छप्पर वाले से पूछते तो वह कहता – मैं तो अभी बसा हूँ। मेरे छप्पर की घास अभी भी हरी है, सूखी नहीं। मेरे से पहले सूखी घास की छप्परवाला पड़ोसी बसा। इस तरह टाल देते। और बजरंग होटल के ठीक बाद कौन-सा घर बसा यह कोई नहीं जान पाया। हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी बरसों से हरी-भरी थी। कभी सूखती नहीं थी। भरी गरमी में भी नहीं। घास बहुत ऊँची हो गई थी। जब ज़ोर की हवा चलती तो छप्पर की घास झुकती और आसपास की झोपड़ी को ढाँप लेती। गरमी में जब सूर्य उत्तरायण होता तो सूर्य छप्पर की हरी घास से निकलता। अभी हरी घास के बीच छोटे-छोटे पीले फूलों के जंगली पौधे निकल आएँगे।

बस्ती के लोग और अधिकतर स्कूल के बच्चे आपस में बात करते कि जब कोई नहीं था तो होटल किसके लिए खुली। होटल के खुलने के दिन से अब तक केवल चाय, भजिया ही बनता रहा। भट्टी में पत्थर का कोयला जलाया जाता। इसका धुआँ दूर-से दिखाई देता। पास ही कोयले की खदान थी। सभी घरों में भी चूल्हा पत्थर के कोयले से जलता था। लोग घरों के लिए कोयला खोदकर ले जाते थे। एक दिन भैरा ने बताया कि उसके पिता बताते थे उनका पहला ग्राहक एक गिलहरी थी।

"गिलहरी।" सबको आश्चर्य हुआ।

"भजिया खाने आई थी?" कुछ चलकर बोलू ने भैरा से पूछा।

"नहीं। चाय पीने।" कहकर भैरा बोलू के पास गया। साथ में दो लड़के बीनू और प्रेमू, एक लड़की कूना भी थी। कूना सबसे छोटी थी। लड़के बोलू के साथ के थे।

"फिर दूसरा ग्राहक कौन था?" बीनू ने पूछा जो बोलू से कुछ दूर खड़ा था। बोलू की तरह चलकर बोलते हुए वह बोलू के पास जाकर खड़ा हो गया।

"दूसरा ग्राहक हाथी था।" भैरा ने कहा।

"हाथी !" कूना ज़ोर से चीखी।

"हाथी की प्याली तो बहुत बड़ी होगी।" बोलू चलकर कूना के पास जाकर खड़ा हो गया। बोलू को पास आया देखकर बोलू का हाथ पकड़ा और कहा "बोलू तू बोलना मत। नहीं तो मेरे पास से चला जाएगा।"

जारी...

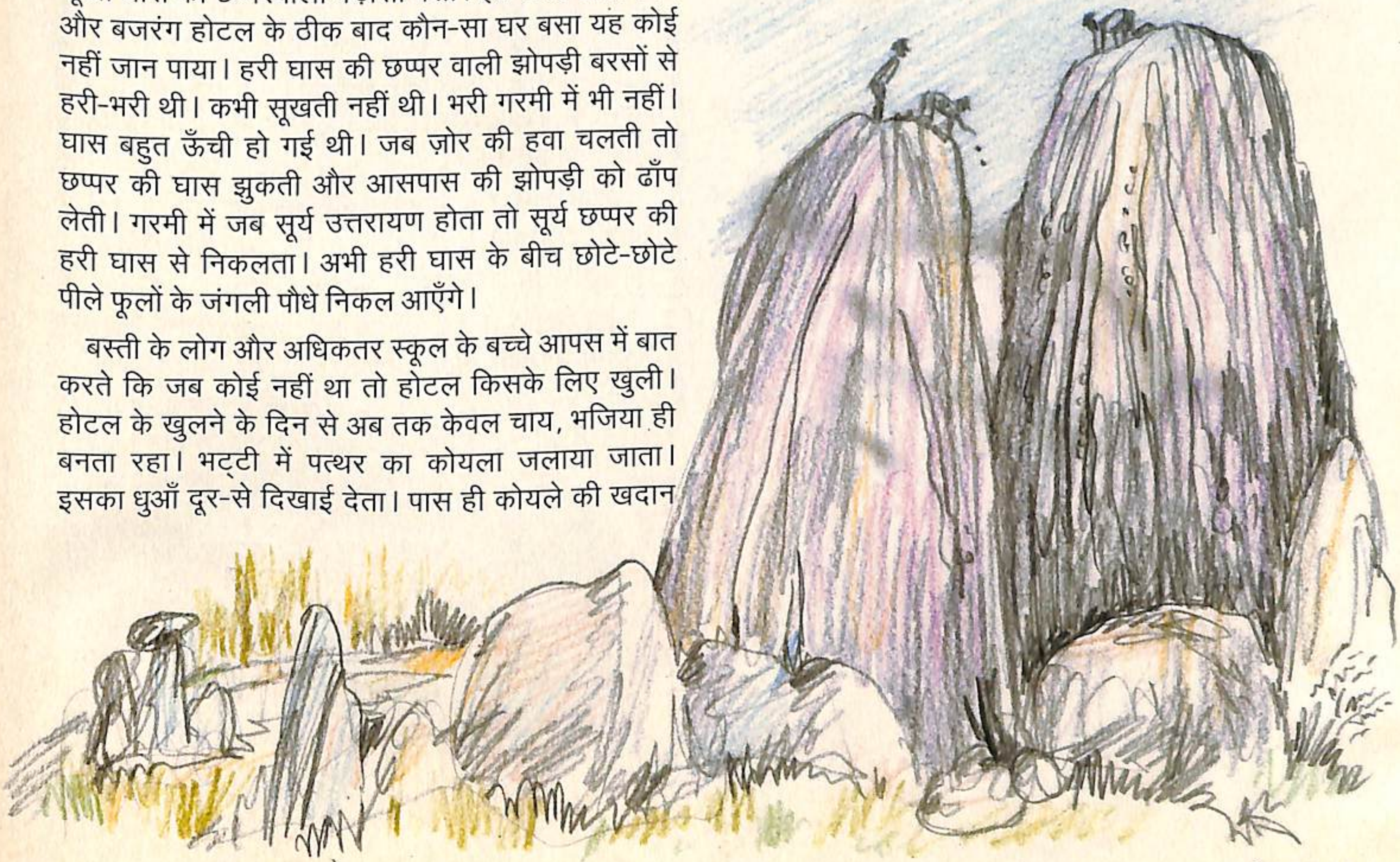

चित्रः अतनु राय

माथा पच्ची

मक्खियों की चाल

शतरंज के बोर्ड पर नौ मक्खियाँ बैठी हैं। तुम पाओगे कि किसी भी पंक्ति, स्तम्भ या कर्ण में एक से अधिक मक्खी नहीं बैठी है।

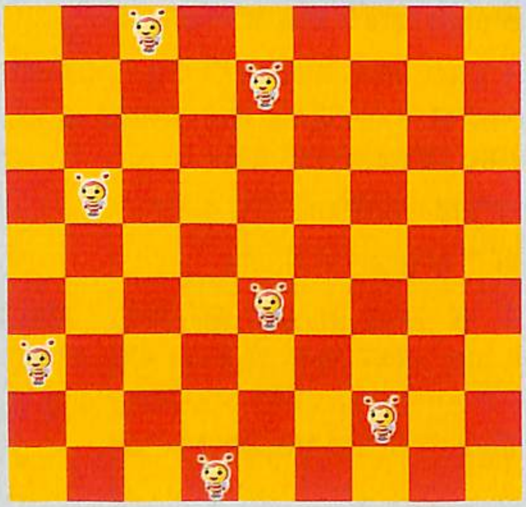

तीन मक्खियाँ चलकर बगल वाले खाली वर्गों में बैठ जाती हैं। बाकी छह अपनी जगह पर बनी रहती हैं।
इत्तेफाक से इस नई स्थिति में भी किसी भी पंक्ति, स्तम्भ या कर्ण में एक से अधिक मक्खी नहीं बैठी है।
बताओ, तीन मक्खियाँ अब किन-किन वर्गों में जा बैठी हैं?

गोले में बच्चे

कई सारे बच्चे एक गोले में खड़े हैं। बच्चों के बीच का फासला बराबर है। सोलहवाँ बच्चा चौथे बच्चे के ठीक विपरीत खड़ा है। बताओ, गोले में कुल कितने बच्चे खड़े हैं?

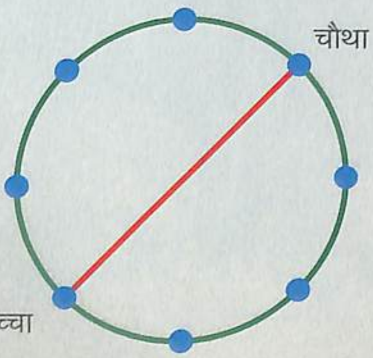

उलझन

खेल के उसूल

विश्व कप का फाइनल। भारत बनाम पाकिस्तान। आखिरी ओवर की आखिरी गेंद। जीत के लिए भारत को सिर्फ एक रन चाहिए।

तुम क्रीज़ पर हो। स्टेडियम में सन्नाटा है। गेंदबाज़ गेंद फेंकता है। गेंद उछलती है। तुम अपना बल्ला उठाते हो। "टक" की आवाज़ हुई और बिना हिचक के तुम दौड़ पड़ते हो। एक रन।

जब तुम मुड़कर देखते हो तो पाकिस्तानी खिलाड़ी आउट! आउट! चिल्लाकर नाच-कूद रहे हैं। गेंद विकेट कीपर के हाथ में है।

पर यह क्या? अम्पायर ने अब तक उगली नहीं उठाई। पाकिस्तानी खिलाड़ी आश्चर्यचकित हैं!

पाकिस्तान का कप्तान अम्पायर के निर्णय पर सवाल उठा रहा है। अम्पायर कह रहा है कि उसने न "टक" की आवाज़ सुनी न गेंद का विस्थापन देखा।

तुमने तो आवाज़ ज़रूर सुनी थी। बाद में रिप्ले ने भी इस की पुष्टि की। पर तुम्हें मालूम है कि अम्पायर का निर्णय फाइनल है।

पाकिस्तान का कप्तान दुखी है। वह तुम्हारे पास आकर कहता है, "तुम जानते हो कि तुमने गेंद को मारा था। और तुम आउट हो।"

इस स्थिति में तुम क्या करोगे? अम्पायर का निर्णय मानोगे या पाकिस्तान के कप्तान (और अपने दिल) की बात? एक तरफ हैं खेल के उसूल और भावना, दूसरी तरफ है जीत की खुशी और देश की इज़्ज़त।

चित्रः अतनु राय

मध्यप्रदेश विकास के 4 वर्ष

बिजली के मामले में वर्तमान सरकार द्वारा किये गये अतिविशिष्ट प्रयासों से राज्य की उत्पादन क्षमता में 2742 मेगावॉट की वृद्धि। दिसंबर 2003 की स्थापित क्षमता पर यह बढ़ौत्री लगभग 92 प्रतिशत है। जल्दी ही 400 मेगावॉट की और वृद्धि। इसी दौरान ट्रांसमिशन प्रणाली की क्षमता 44 प्रतिशत बढ़ी।

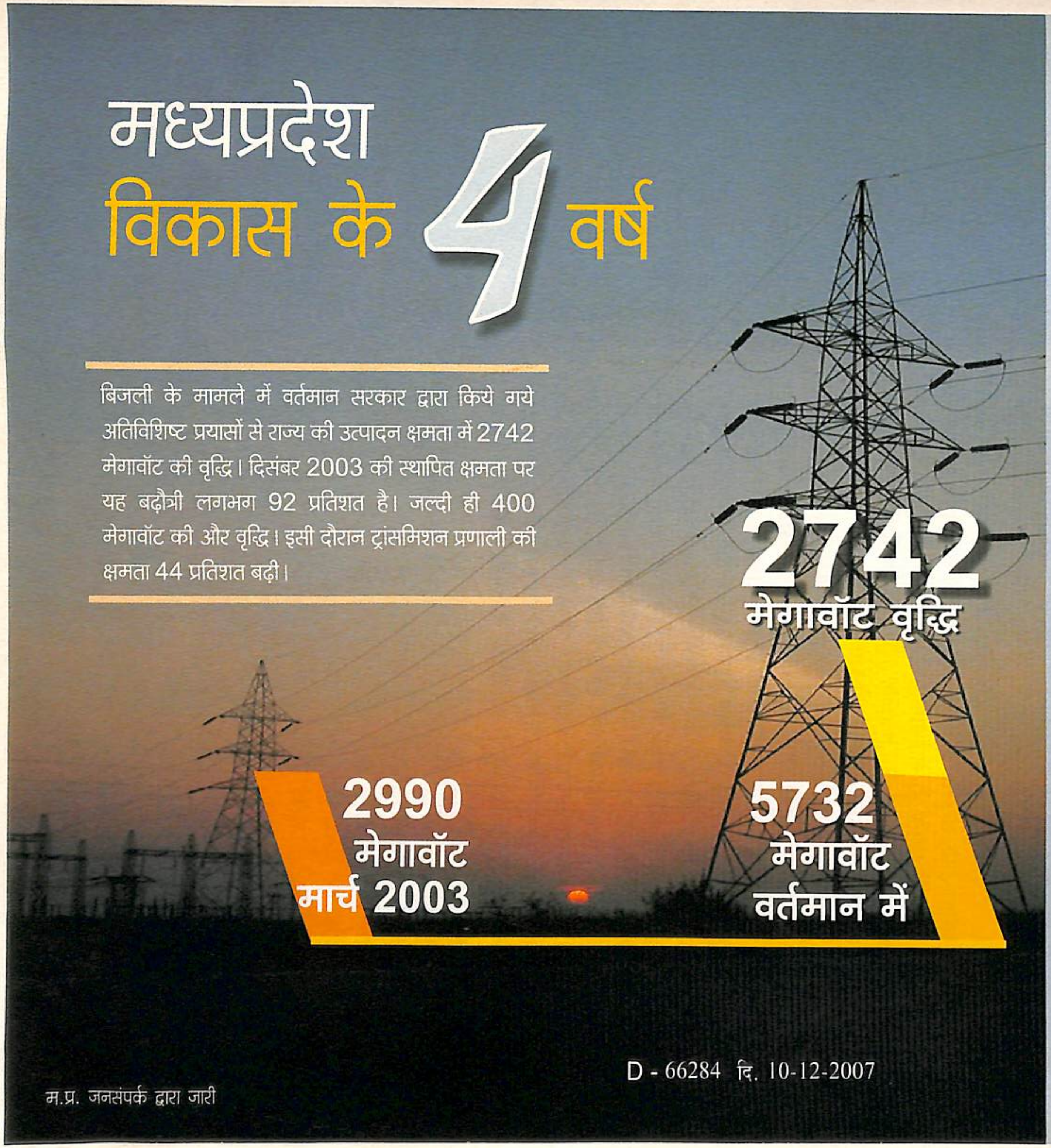

मंजिल की ओर बढ़ते कदम बिजली

- अभी की कमी पूरी करने और बेहतर बिजली प्रदाय करने के लिये बिजली खरीदी की मात्रा में पूर्व की तुलना में व्यापक वृद्धि। जहां जनवरी 99 से दिसंबर 03 की अवधि में करीब 344 करोड़ की बिजली खरीदी की गई वहां पिछले तीन वर्षों में 2 हजार करोड़ से भी अधिक की बिजली खरीदी कर नागरिकों को राहत।
- राज्य सरकार द्वारा किसानों के 1783 करोड़ के बकाया का म.प्र. विद्युत मंडल को भुगतान। किसानों के टैरिफ़ सबसिडी के एवज में 1798 करोड़ रुपये भी मंडल को राज्य सरकार ने दिए। म.प्र. विद्युत नियामक आयोग द्वारा बिजली की दरों में अप्रैल 07 से वृद्धि के बाद भी कृषकों और पावरलूम उपभोक्ताओं को पुरानी दरों पर विद्युत उपलब्ध कराने के लिये 534 करोड़ की सबसिडी।
- वितरण ट्रांसफार्मरों के उचित रख-रखाव के फलस्वरूप खराबी की दर में 7 प्रतिशत की कमी।
- राज्य की विद्युत उत्पादन क्षमता में वृद्धि के लिये निजी कंपनियों के साथ 12 हजार मेगावॉट की विद्युत परियोजनाओं के समझौते ज्ञापन। सीधी जिले के सासन में चार हजार मेगावॉट के अल्ट्रामेगा पावर प्रोजेक्ट में पूर्ण सहयोग।
- म.प्र. पावर ट्रांसमिशन कंपनी की वर्ष 2004-05 के लिये द्वितीय बेस्ट एक्जीक्यूटेड पावर प्रोजेक्ट का राष्ट्रीय अवार्ड प्रधानमंत्री द्वारा दिया गया।
- वर्ष 2006 में ट्रांसमिशन के क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिये एशियन पावर मैग्जीन द्वारा कंपनी की यूटिलिटी ऑफ द ईयर 2006 और टी. एंड टी. प्रोजेक्ट ऑफ द ईयर के अवार्ड। इंडोटेक फाउन्डेशन का भी प्रदेश को विद्युत क्षेत्र सुधार कार्य एवं प्रयास के लिये पुरस्कार।

D - 66284 दि. 10-12-2007

म.प्र. जनसंपर्क द्वारा जारी

पी. एम. लाड

चीकू की कहानी

1981-82 में भोपाल में वन विहार (खुला अजायबघर) बनने की शुरुआत हो रही थी। इसमें मध्यप्रदेश में पाए जाने वाले प्राणियों को रखने का विचार था। इनके लिए बाड़े बनाए जा रहे थे। लोगों के पालतू शाकाहारी प्राणी इकट्ठा होने शुरू हो गए थे। इन्हीं दिनों एक खबर मिली कि जबलपुर के पास सिहोरा के वनों में एक बाघ का बच्चा मिला है जिसे भोपाल लाया जा रहा है। खबर सुनकर जितनी खुशी हुई उतनी ही चिन्ता भी हुई – उसे पाला कैसे जाए? माँसाहारियों के बच्चे पालना काफी मुश्किल काम होता है। ज़्यादातर तो बचपन में ही किसी न किसी बीमारी से मर जाते हैं।

उन दिनों श्री जे. जे. दत्ता मुख्य वन्य प्राणी अभिरक्षक थे और श्री रंजीत सिंह वन सचिव थे। सभी चिन्तित थे कि उस नन्हे मेहमान को पाला कैसे जाए! चर्चा के दौरान तय हुआ कि क्यों न उसे उतनी ही सावधानी और सुरक्षा से पाला जाए जितनी इंसानी बच्चे के लिए ज़रूरी होती है। तय हुआ कि मेरी पत्नी श्रीमती कमल लाड की देखरेख में उसे पाला जाए। मेरी पत्नी एक स्त्री रोग विशेषज्ञ हैं।

इस तरह वो बच्चा हमारे घर आ गया। आते ही हमारे बच्चों ने उसका नाम चीकू रख दिया। चीकू उस ज़माने में बच्चों की कार्टून पत्रिका का हीरो हुआ करता था। विचार-विमर्श के लिए श्रीमती लाड ने अपने दो शिशु रोग विशेषज्ञों को घर पर बुला लिया। डॉक्टरों ने तय किया कि चीकू को सावधानी और सुरक्षा से कैसे पाला जाए।

मेरी पत्नी को एक बार फिर से बच्चा पालने की ज़िम्मेदारी निभानी पड़ी। चीकू को दूध पिलाने के लिए कई बोतलें और निप्पल मँगवाए गए। रात में उसकी सुरक्षा और सोने के लिए एक पिंजरा भी लाया गया। चीकू को दूध पिलाने का ज़िम्मा श्रीमती लाड ने अपने हाथों में लिया। उसकी बोतलों का वे विशेष ध्यान रखती थीं। एक बड़े बरतन में उसकी बोतलें हमेशा उबलती रहती थीं। चीकू धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। उसकी उछल-कूद, शरारतें पूरे घर में चलती रहतीं। कहीं बाहर न चला जाए इस डर से घर के बाहर फेंसिंग लगा दी गई थी। घर के गद्दे, तकिए उसके खास निशाने में रहते।

दूध के साथ-साथ उसे रबड़ी भी दी जाने लगी थी। इसे वह बहुत शौक से खाता था। जब वह तकरीबन 4-5 महीने का हुआ तो उसे एक खरगोश दिखाया गया, जिसे उसने एक माहिर शिकार की तरह मारा और सफाई से खा गया।

चीकू को पूरे घर में घूमने-फिरने की आज़ादी थी। कभी-कभी वह मकान की पहली मंज़िल के बरामदे में जा बैठता और सड़क से साफ दिखाई देता। उसे देखकर आसपास के कुत्तों ने घर के सामने से निकलना बन्द कर दिया था। सामने के प्रोफेसर मूर्ति की गाय जब चीकू को देख लेती तो दूध न देती। उन्होंने दरवाज़े पर गाय लाना बन्द कर दी।

हमारे घर बाघ का बच्चा देखने बहुत से लोग आते। एक दिन श्रीमती महाजन अपनी बेटियों के साथ चीकू को देखने आईं। तब तक चीकू थोड़ा बड़ा हो गया था। बच्चों पर हमला करने के लिए वह खासा उतारू रहता। इसलिए 6-7 साल से छोटे बच्चों को गोद में रखकर ही चीकू दिखाया जाता। बच्चे भी उपद्रवी चीकू को देख सहम जाते थे। कुछ दिनों बाद जब हम महाजन के घर गए तो उनकी बड़ी बेटी ने दरवाज़ा खोला। माँ के पूछने पर कि कौन आया है उसके मुँह से अनायास निकल पड़ा, चीकू की मम्मी आई हैं।

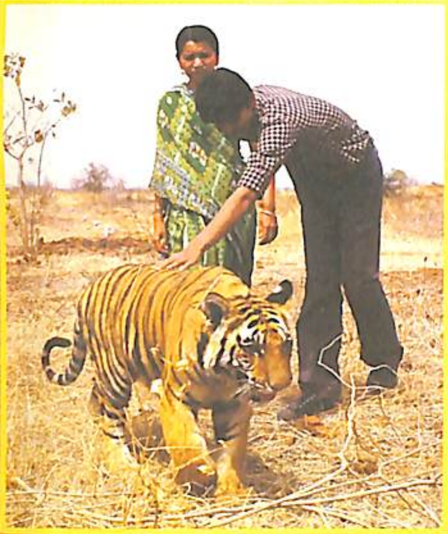

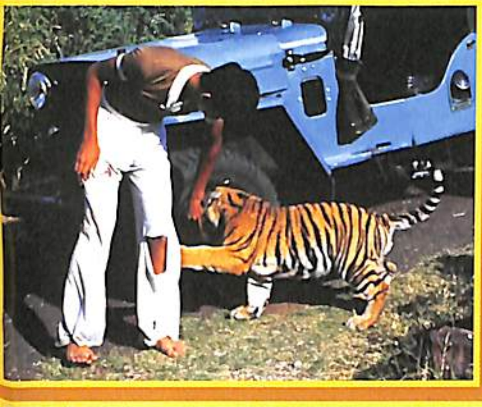

उन दिनों प्रसिद्ध पक्षी विज्ञानी सालिम अली भोपाल आए हुए थे। एक नई जीप उन्हें जंगल ले जाने वाली थी। जीप को गेट के अन्दर खड़ी कर ड्राइवर कुछ सामान लेने घर के अन्दर आया। चीकू मानो इसी की बाट जोह रहा था। देखते-देखते उसने जीप के पीछे की सारी सीटें फाड़ दीं। ड्राइवर घबराकर जीप वापस ले गया और श्री दत्ता को सारा किस्सा सुनाया। इस पर दत्ता साहब बोले, "मुख्य वन्य प्राणी अभिरक्षक की जीप की सीट शेर नहीं तो क्या कुत्ता फाड़ने की हिम्मत करेगा?"

चीकू अब सात महीने का हो गया था। उसे घर पर रखना अब खतरे से खाली नहीं था। वह छोटे बकरे तक का शिकार करने लग गया था। इसलिए बड़े दुखी मन से हमने उसे वनविहार भेज दिया।

हम लोग नियमित रूप से चीकू को देखने जाते। साथ में रबड़ी ले जाना कभी न भूलते, जिसे वह माँसाहारी होते हुए भी बड़े चाव से चाटता।

चूँकि चीकू घर में पला-बढ़ा था इसलिए उसे मनुष्यों से बिलकुल डर न लगता। और यही उसके लिए बड़ा महँगा पड़ा। वनविहार में बच्चों की आवाज़ सुनकर वह अपने ठण्डे छायादार घर को छोड़ बाहर आ जाता था। शायद इसी वजह से मई की तपती दोपहर में उसे लू लग गई। यही उसकी मौत का कारण भी बनी। तब तक वह 15 महीने का भरा-पूरा वयस्क बन चुका था। उस की याद में वनविहार के दक्षिणी द्वार का नाम "चीकू द्वार" रखा गया है।

बगुला रै

बगुला रै
कोड़ै चाल्यौ
नानी कै
कांई लेबा
गुड़-धाणी लेबा
कांई देख्यौ
टाबरियो
कैंया रोयो
उआंय-उआंय

जयपुर के पास के एक गाँव रेनवाल से प्रभात द्वारा सहेजा एक लोकगीत

तीन तीतरों के तिगाड़े को तजाकिस्तान के तगड़े तोते ने तालाब में तुक्के से तैराया।

अगले अंक में

इन करामाती तोतों से मिलेंगे।

सभी फोटोः पी. एम. लाड

पंजीयन क्र. 50309/85 के अन्तर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/ भोपाल/2006-08

राजेश जोशी

चाँद की वर्तनी

चाँद लिखने के लिए चा पर चन्द्र बिन्दु लगाता हूँ
चाँद के ऊपर चाँद धर कर इस तरह
चाँद को दो बार लिखता हूँ
चाँद की एवज सिर्फ़ चन्द्र बिन्दु रख दूँ
तो काम नहीं चलता भाषा का
आधा शब्द में और आधा चित्र में
लिखना पड़ता है उसे हर बार
शब्द में लिखकर जिसे अमूर्त करता हूँ
चन्द्र बिन्दु बनाकर उसी का चित्र बनाता हूँ

आसमान के सफे पर लिखा चाँद
प्रतिपदा से पूर्णिमा तक
हर दिन अपनी वर्तनी बदल लेता है
चन्द्र बिन्दु बनाकर पूरे पखवाड़े के यात्रा वृतांत का
सार संक्षेप बनाता हूँ

जहाँ लिखा होता है चाँद
उसे हमेशा दो बार पढ़ना चाहता हूँ
चाँद
चाँद !

चित्र - सिद्धार्थ

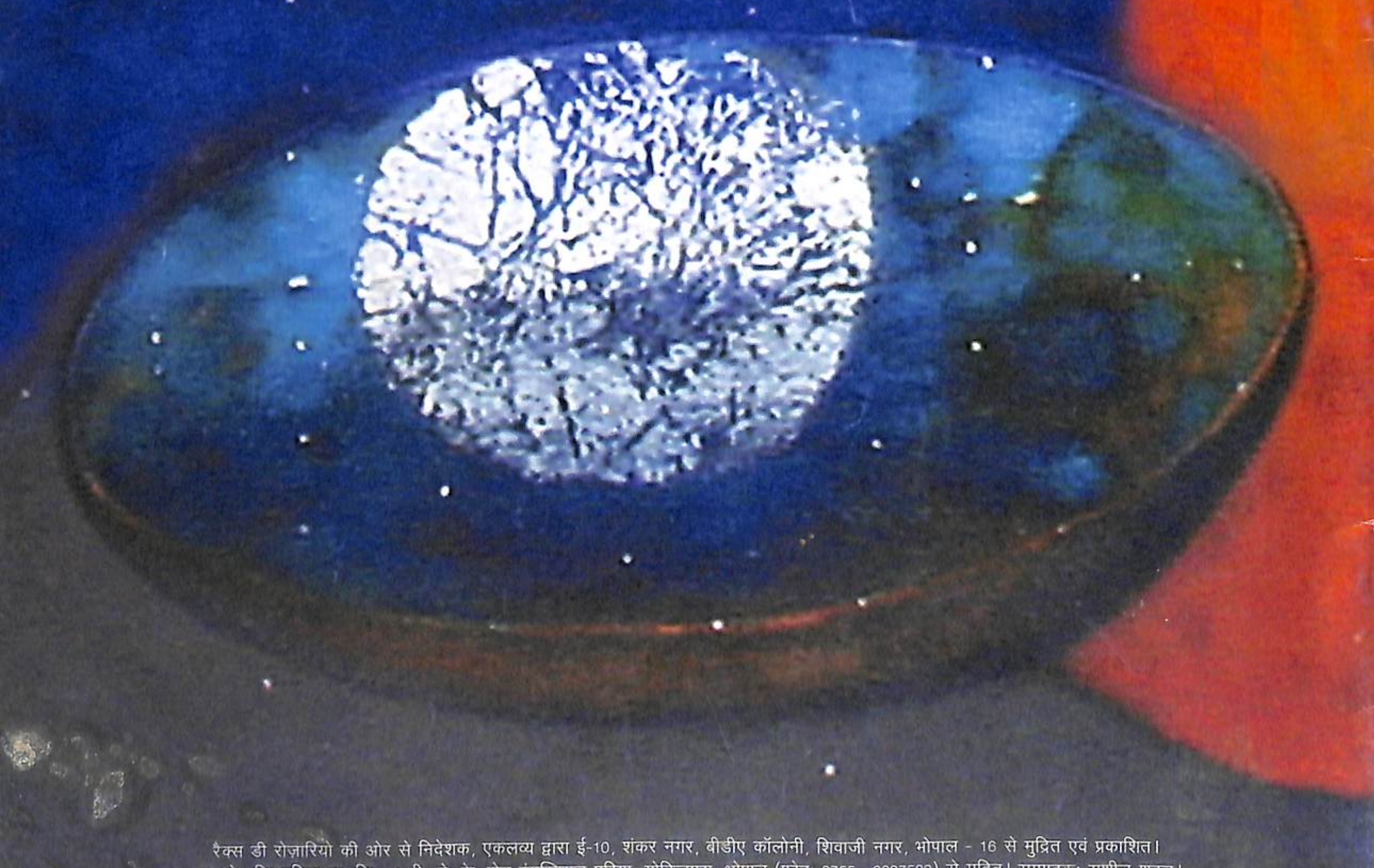

रैक्स डी रोज़ारियो की ओर से निदेशक, एकलव्य द्वारा ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 16 से मुद्रित एवं प्रकाशित।
आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. 15-बी, जे. के. रोड इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित। सम्पादकः सुशील शुक्ल।